संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(माधुरी-संपादक)

शरीर-विज्ञान की उत्त म
पुस

हमारे शरीर की रचना (दो भाग) .. .	६।॥)
सरल शरीर-विज्ञान	।॥)
शरीर-विज्ञान	॥)
हमारे शरीर की कथा	⁄)॥
मानुषी अंग और स्वास्थ्य	।॥)
आकृति-निदान	१)
शरीर तथा शरीर-रक्षा	।॥)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तक -कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का सैंतीसवाँ पुष्प

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

लेखिका

श्रीमती हेमन्तकुमारीदेवी भट्टाचार्य

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सं० १९८१ वि० [मूल्य ॥=)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ
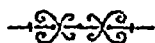
मुद्रक
श्रीविश्वंभरनाथ भार्गव
स्टैंडर्ड-प्रेस
प्रयाग

[सिर्फ टाइटिल और आरंभ के ८ पृष्ठ नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित]

संपादक का वक्तव्य

लेखिका

हिंदी की इनी-गिनी लेखिकाओ मे श्रीमती हेमंतकुमारी-देवी भट्टाचार्य का आसन बहुत ऊँचा है । आपकी कई कृतियाँ इस समय हिंदी की शोभा बढा रही हैं, जिनमें स्त्री-कर्तव्य, वैज्ञानिक खेती, युक्तप्रदेश का व्यापार, हिंदू-महिलाओं का कर्तव्य, प्रयाग की प्रदर्शिनी, आदर्श पुरुष रामचंद्र आदि मुख्य हैं । आप वग-नारी हैं ; किंतु युक्तप्रांत मे जन्म लेने के कारण आप हिंदी को ही अपनी मातृभाषा मानती हैं, और उसी की उन्नति और श्री-वृद्धि के लिये आपने बहुत श्रम किया है । आप जो कुछ लिखती हैं, वह इतना अच्छा कि कई वार आपके लेख पुरुषों के कंपिटीशन में भी सर्वोत्तम समझे गए और पुरस्कृत हो चुके है । किंतु वड़े खेद की वात है कि जब से आप, अपने पतिदेव के पेंशन ले लेने पर अपने गाँव जामग्राम (बंगाल) मे जा बसी हैं, हिंदी की ओर से कुछ उदासीन-सी हो गई हैं । अतएव, ऐसी अवस्था में, यह कम हर्ष की वात नहीं कि इधर हमने आप-से दो पुस्तकें—(१) सचित्र शरीर-विज्ञान, (२) सचित्र स्वास्थ्य-रक्षा—लिखवा डालीं, और अब उन्हें गगा-पुस्तक-

माला मे गूँथ रहे हैं। प्रकाशनार्थ अपनी पुस्तक देने के लिये आपको अनेक धन्यवाद।

श्रीमतीजी लखनऊ-निवासिनी हैं। सन् १८८६ में, लखनऊ ही में, श्रीयुत उमेशचंद्र चौधरी के घर, आपका जन्म हुआ था, और विवाह पंडित मार्कंडेयप्रसाद भट्टाचार्य के साथ सन् १८९९ में। आपका अधिकांश जीवन लखनऊ मे ही बीता है। अपने लखनऊ-निवास के समय हमारी पूजनीया माताजी के पास आप अक्सर आया करती थीं। उनसे आपकी मित्रता थी। आपका उस समय का सरल स्वभाव, मृदुल और स्नेह-पूर्ण व्यवहार हमें अब भी याद है। आप सीने-पिरोने मे निपुण, घर के काम-काज में दक्ष तो है ही, साथ ही आपका जीवन साहित्य-चर्चा में भी बीतता है। अतएव आप आदर्श हिंदू-नारी हैं। ईश्वर आपको चिरायु करें। हिंदी को आपसे अभी बहुत कुछ आशा है।

पुस्तक

संसार मे स्वास्थ्य-रक्षा ही सबसे महत्त्व की, सबसे आवश्यक बात है। स्वास्थ्य ही जीवन का मूल है। जिसने इसे खो दिया, उसके लिये सारा संसार अंधकारमय है—उसे कोई लौकिक सुख सुलभ नहीं। वह सब प्रकार संपन्न होकर भी दरिद्री है। किंतु शरीर की भीतरी बातें जाने बिना स्वास्थ्य-रक्षा आकाश-कुसुम है। शरीर-रूपी मोटर को जीवन-

पथ पर भली भाँति चलाने के लिये मनुष्य-रूपी ड्राइवर के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि वह सबका न सही, उसके खास-खास पुर्जों का तो ज्ञान प्राप्त कर ले। मतलब यह कि सुख की सदिच्छा रखनेवालों को शरीर-शास्त्र से अवश्य परिचित होना चाहिए। जो लोग समयाभाव के कारण इस विषय की बड़ी-बड़ी पुस्तकें नहीं पढ़ सकते, वे, आशा है, इस पुस्तिका से यथेष्ट लाभ उठावेंगे, और लेखिका के तथा हमारे श्रम को सफल करेंगे।

यहाँ पर हम शरीर-विज्ञान के विशेषज्ञ, मित्रवर डॉ० त्रिलोकनाथ वर्मा को धन्यवाद देना आवश्यक समझते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक के एक बार प्रूफ देखकर और अनेक संदिग्ध स्थलों को स्पष्ट करके हमें संपादन-कार्य में सहायता पहुँचाई है। पुस्तक की भाषा का भी हमने पर्याप्त परिमार्जन कर दिया है। आशा है, इस पुस्तक से पाठकों का कुछ मनोरंजन और ज्ञान-वृद्धि अवश्य होगी।

दुलारेलाल भार्गव

विषय-सूची

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

नर-शरीर
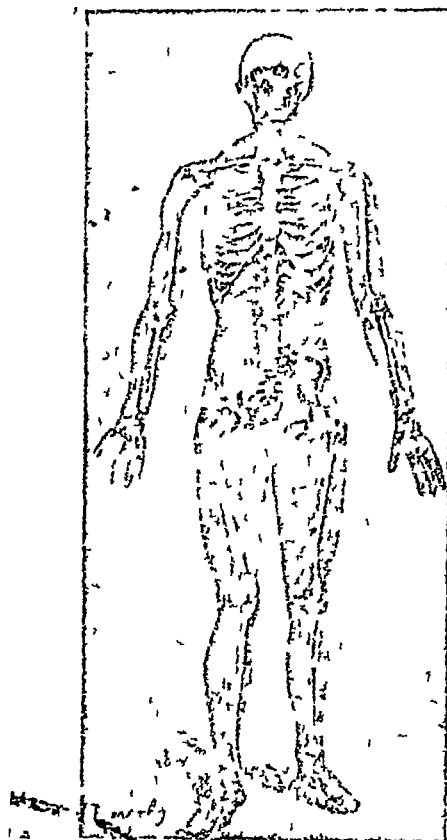
संक्षिप्त शरीर-वि ान

प्रथम अध्याय

नर-कंकाल

ड्डियों के अतिरिक्त कंकाल और कोई पदार्थ नहीं है। इस पुस्तक में शरीर का एक नक़्शा भी दिया गया है, जिससे साधारण आकृति के साथ कंकाल का क्या संबंध है, यह समझ में आ जायगा। किंतु कोमल तंतुओं का उल्लेख नहीं किया गया। इससे मालूम होगा कि हड्डियाँ आयतन और गठन के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं। उनमें कोई चौड़ी और कोई स्लेट के माफ़िक हैं—जैसे करोटी और उस स्थान की हड्डियाँ। कोई लंबी और कम चौड़ी है—जैसे बाहु और जंघा की हड्डियाँ। कोई छोटे-छोटे ब्लाक के माफ़िक हैं—जैसे मणि-बंध और चरण-ग्रंथ की हड्डियाँ। तमाम शरीर में सब मिलाकर २०६ हड्डियाँ हैं। आप नक़्शे की कोई भी हड्डी लेकर मालूम कर सकते हैं कि वह कम-से-कम दूसरी एक, दो या तीन हड्डियों से संलग्न है। जहाँ पर दो हड्डियाँ

मिली है, वहाँ एक संधि है। उसके आकार में भी विशेषता है। उसकी दृढ़ता के अनुसार दोनें हड्डियों में न्यूनाधिक मात्रा से गति होती है। इसी कारण सब हड्डियाँ, संधियों के द्वारा, शरीर के केंद्र में, एक दृढ़, अथच नमनीय आकृति में परिणत हुई है। वह आकृति भी कोमल अंशों से संबद्ध है। कंकाल की परीक्षा करने के पहले उसके उपादान के विषय में एक बात कहना उचित है। बहुत आदमियों का विश्वास है कि वह कठिन अर्गलवत् (ज़ंजीर-सा) पदार्थ है। पर में यह बात नहीं है। वह सजीव पदार्थ और कोषों से गठित है। उन कोषों के छिद्रों में कठिन मिट्टी के समान जो पदार्थ संचित है, वह हड्डियों की आवश्यक कठिनता के कार्य को संपन्न करता है।

यदि कंकाल के विषय में विचार किया जाय, तो शरीर के केंद्र में स्थित स्तंभ-सदृश मेरु-दंड (spinal column) की आलोचना करना उचित है। इसके संबंध में अवशिष्ट हड्डियों का विचार करना चाहिए। मेरु-दंड तेंतीस कशेरुओं (vertebræ) से संगठित है। उनमें २४ सच्ची है; क्योंकि वे जीवन-भर अलग रहती हैं। नीचे की ६ झूठी है; क्योंकि वे त्रिकास्थि (sacrum) और चंचु-अस्थि (coccyx) दो विभागों के साथ मिल जाती हैं। इन चौबीस कशेरुओं में सात ग्रीवा-संबंधी (cervical), बारह पृष्ठ-देशीय (dorsal), और पाँच कटिस्थ (lumbar) है। हरएक कशेरुका में एक-एक शरीर और एक-एक मेहराब है। हरएक शरीर सामने रहकर परस्पर दूसरी उपास्थियों (cartilages) और बंधनियों के

द्वारा परस्परसंयोजित है। मेहरावें पीछे की ओर, वंधनी के द्वारा, दृढ़ रूप से संयुक्त हैं। मेहराव के पीछे की तरफ़ एक चोंगे-जैसी नली परस्पर अविच्छिन्न रूप में अवस्थित है। उस नली के चोंगे के भीतर, जीवितावस्था में, सुषुम्ना भरी है। यह वात मैं पहले कह चुकी हूँ कि नीचे की ६ कशेरुकाएँ त्रिकास्थि और चंचु-अस्थि के साथ मिल जाती हैं। त्रिकास्थि वस्ति-गह्वर (pelvis) के रहकर उसको बाँधे हुए है। चंचु-अस्थि ऊपर की ओर घूमी हुई कील-जैसी है। यही हमारे पैतृक पुच्छ का ध्वंसावशेष है। सारा मेरु-दंड लंबाई में पर्याय क्रम से हड्डियों और संधियों के द्वारा गठित है। उसकी शक्ति और स्थिति-स्थापकत्व इतना अधिक है कि उसको पीछे और सामने की तरफ़ झुकाया और एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ सहूलियत से घुमाया-फिराया जा है।

मेरु-दंड के ऊपर करोटी स्थापित है। इस करोटी की जड़ में दो हड्डियों की वाढ़ (Condyle) है, जो, दो कटोरों के आकार में, ग्रीवा-संवंधी कशेरु के ऊपर, आंशिक समभार, आंशिक वंधनी और आंशिक लगी हुई चमड़े की पेशियों द्वारा स्थापित है। यह करोटी, मेरु-दंड के शीर्ष-स्थान में स्थापित रहने पर भी, आवश्यकता के अनुसार, इधर से उधर और एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व को घुमाई जा सकती है। करोटी के मुख्य दो अंश हैं—मस्तिष्क-आच्छादनी और मुख। पहला मेहरावदार एक अस्थि-कंदर है; उसमें मस्तिष्क के उदरस्थ और पश्चाद्भाग के अंश सुरक्षित और निरापद हैं। दूसरा अंश

कुछ हलकी शृंखला-हीन हड्डियों से बना है। इसमें नेत्र, नासिका और मुख के गह्वर हैं, और वाक्योच्चारणकारी तथा चबानेवाली पेशियाँ संयोजित हैं। सात ग्रीवा-संबंधी कशेरुओं में कोई विशेष स्वत्व नही है। बारह पृष्ठ-देशस्थ (dorsal) कशेरुओं में एक-एक जोड़ी पंजर हैं। ये पंजर हलकी हड्डियों के बने और कशेरु के साथ संयोजित हैं। ये सब वक्षःस्थल के हरएक पार्श्व को वेष्टन कर उपास्थि के द्वारा उरोस्थि (sternum) में आबद्ध हैं। प्रथम सातों पंजर इस प्रकार से अवस्थित हैं। परवर्ती तीन पंजर सम्मुखस्थ सातों पंजरों के उपास्थि में आबद्ध हैं, उरोस्थि में नहीं। शेषोक्त पंजर, जो भासमान पंजर (floating ribs) कहलाते हैं, बहुत ही छोटे और सामने बिलकुल आबद्ध नही हैं। इस प्रकार वक्षःस्थल पृष्ठ-देशस्थ कशेरुओं के द्वारा पीछे की तरफ़ दो पार्श्व के पंजरों और सामने चौड़े उरोस्थि के द्वारा सीमाबद्ध है। इन हड्डियों का पश्चाद्भाग जब पेशियों द्वारा भर जाता है, तब उसके भीतर जीवनी-शक्ति का यंत्र हृदय और फुसफुस अवस्थित रहता है। यदि ऊपर के अंशों की हम लोग आलोचना करें, तो यह देख पड़ेगा कि वक्षःस्थल का पश्चाद्भाग मेरु-दंड के हर तरफ़ एक चौड़ी त्रिकोण हड्डी को स्कंधास्थि के साथ वहन करता है। इस अस्थि के पीछे, पेशी की संयोजना के लिये, स्कंधास्थि का मेरु-दंड (spine of the scapula)-नामक एक मेढ़ और सामने coracoid process-नामक एक कठिन चंचु है। स्कंधास्थि (scapula), उरोस्थि (Sternum) में अक्षकास्थि

(clavicle)-नामक कृश हड्डी के द्वारा संयोजित है। ऊपर के प्रत्यंग और देह के बीच में यही एक मात्र संयोजक है। स्कंधास्थि के अगंभीर पात्र में प्रगंडास्थि (humerus), अर्थात् बाहु के उपरिस्थ हड्डी का बृहत् गोलाकार मस्तक, शिथिल रूप से संयोजित है। इसका मस्तक, स्कंधास्थि पात्र के मस्तक से बड़ा होने के कारण, हाथ की इच्छा के अनुसार स्वाधीन भाव से घुमाया जा सकता है। प्रगंडास्थि का कांड लंबे स्तंभ के माफ़िक है, जो मस्तक से हड्डी के शेष प्रांत तक जाकर चौड़े विश्रृंखल प्लेट के रूप में परिणत हुआ है। इस प्लेट के बाहर और भीतर का किनारा तीक्ष्ण है। प्रगंडास्थि के उपरिस्थ प्रांत में Greater tuberosity नाम की एक बाहर निकली हुई हड्डी देख पड़ती है। उसमें स्कंधास्थि की कुछ पेशियाँ संयुक्त हैं। शेष प्रांत के कोने में अग्रबाहु की कुछ पेशियाँ सन्निवेशित हैं। प्रगंडास्थि की निम्न सीमा में जो प्लेट अवस्थित है, उसमें एक बाहर निकली हुई हड्डी और एक गहर है। इनमें से प्रथम अस्थि अग्रबाहु के बाह्यास्थि के मस्तक के संधियुक्त हुआ है, और शेषोक्त अस्थि अग्रबाहु के आभ्यंतरीण अस्थि के साथ सम्मिलित हुआ है। पहली हड्डी का नाम रेडियस (radius) या बहिःप्रकोष्ठास्थि और दूसरी का नाम अलना (ulna) या अंतःप्रकोष्ठास्थि है। रेडियस-हड्डी चोरस, ऊपर गोलाकार और नीचे चौड़ी है। इसका मस्तक, जो प्रगंडास्थि और अलना नाम की हड्डी के साथ संयुक्त हुआ है, अलना के निकटवर्ती स्थान के ऊपर स्वाधीन

भाव से घूम-फिर सकता है। अलना का ऊपर का किनारा मोटा और भारी है। उसकी तोते की चोंच की-जैसी आकृति होने के कारण वह प्रगंडास्थि को पकड़ रख सकती और उसके ऊपर हिल सकती है। इस प्रकार अग्रबाहु को उपरिस्थ बाहु के ऊपर इधर-उधर टेढ़ा किया जा सकता है। अलना का निचला भाग पतला और हलका है। रेडियस के नीचे के मोटे सिरे में लगे होने के कारण वह मेहराब के आकार में मणिबंध-अस्थि (wrist bone) को धारण करता है। मणिबंध-अस्थियाँ संख्या में आठ और न्यूनाधिक आकार में चतुष्कोण हैं। वे सब अलना, रेडियस और करभास्थि के निम्नस्थ स्थान के बीच में पाँच हैं। वे करतल के बीच में रहकर उँगलियों को धारण करती हैं। हरएक उंगली में तीन हड्डियाँ हैं। केवल अँगूठे में दो हैं। प्रथम अस्थि-व्यूह-निचय उँगली की करभास्थि (metacarpal bone) के साथ संलग्न है। द्वितीय व्यूह प्रथम के साथ संयुक्त और तृतीय व्यूह द्वितीय व्यूह के साथ संश्लिष्ट है। करभास्थि तथा प्रथम और द्वितीय व्यूह-निचय लंबी हड्डी के आकार में है। परंतु तृतीय व्यूह की अस्थियाँ चौड़ी हैं, और उनका ऊपरी भाग गोलाकार। उसमें नाख़ून लगे हुए हैं। प्रत्येक व्यूह की अस्थि अपने सहचर के साथ स्वाधीन-गतिशील, कोणविशिष्ट संधि के द्वारा संयुक्त है।

ऊपर के अंग की हड्डियों के विषय में मैं आलोचना कर चुकी। अब मेरु-दंड के विषय में लिखूँगी। पृष्ठ-देशस्थ कशेरु के नीचे पाँच बड़े कटिस्थ कशेरु (lumbar vertebræ) हैं।

हरएक अपने ऊपर के कशेरु से चौड़ा और मोटा है। उनके पंजर नहीं है। चौडी पेशियों ने इन सब कशेरुओं के ऊपर स्थित वक्षःस्थल और वस्ति-गह्वर (Pelvis) से फैलकर वक्षः-स्थल के ठीक नीचे एक प्रकोष्ठ को आच्छादित कर रक्खा है। इस प्रकोष्ठ को उदर-गह्वर (abdominal cavity) कहते हैं। इसमें पाकाशय, आँतें, यकृत्, प्लीहा और मूत्रग्रंथि (kidney) इत्यादि आवश्यक अंग रहते हैं। कटिस्थ कशेरु त्रिकास्थि के ऊपर अवस्थित है। इस त्रिकास्थि के नीचे क्षुद्र चंचु-अस्थि अवस्थित है। त्रिकास्थि के नीचे और दायें-बायें जघनास्थि (Ilm) अवस्थित है। उसके नीचे वंकुकुंदरास्थि (Ischium) संलग्न है। विटप (pubes) नाम की दो छोटी हलकी हड्डियाँ समकोण में टेढ़ी होकर सामने जघनास्थि (Ilia) और वंकुकुन्दरास्थि को संयोजित किए हुए हैं। इस प्रकार अस्थि का जो गोलाकार छिद्र हुआ है, वही वस्ति-गह्वर कहलाता है।

वस्ति-गह्वर के बाहर दोनों तरफ़ एक गहरा पात्र है। उसमें ऊर्वास्थि (Femur) का गोलाकार मस्तक सलग्न है। ऊर्ध्वा-स्थि के मस्तक से एक गोलाकार अंश निकलकर हड्डी के एक कांड के साथ सम्मिलित हुआ है। इनके संगम-स्थान के ऊपरी सिरे में एक बड़ी गाँठ है, जिसे वृहत् धावन-प्रवर्द्धन (Great trochanter) कहते हैं। इस वृहत् धावन-प्रवर्द्धन में कुछ पेशियाँ वस्ति-कोटर की अस्थि से संलग्न हुई हैं। इसके नीचे के सिरे में एक क्षुद्र धावन-प्रवर्द्धन (lesser trochanter) अव-स्थित है। ऊर्ध्वास्थि का लंबा गोल कांड दो दृढ़ उँगुलियों के

नीचे आकर हुआ है। ये दोनों उँगलियाँ वाहरी और भीतरी अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन (condyle) कहाती हैं। ये दीर्घास्थियों, अर्थात् मनुष्य की जाँघों, की दोनों हड्डियों के बीच वृहत्तर अस्थि के साथ संयुक्त हैं। जानु-संधि के सामने के ऊपर जान्वस्थि (Patella) अवस्थित है। यह हड्डी जानु के सामने के ऊपर की बड़ी पेशी के कंडरा (tendon) के भीतर निहित है। यह ऊर्ध्वास्थि के अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन के ऊपर चढ़कर कंडार को उत्तोलन-शक्ति प्रदान करती और संधि-स्थान को भी हानि से बचाती है। दीर्घास्थि के मनुष्य-जंघास्थि-द्वय के बीच में वृहत्तर अस्थि का मस्तक, स्थूल ऊर्ध्वास्थि के अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन को धारण करने के लिये, चौरस हो आया है। कांड का आकार त्रिकोण है। उसके सामने तीक्ष्ण दृढ़ मेढ़ है, जिसे जंघास्थि (shin) कहते हैं। संपूर्ण अंश मे कठिन और दृढ होने पर भी, यह जंघास्थि कांड के नीचे के सिरे में तंग हो गई है; परंतु भीतर आभ्यंतरीण गुल्फ (inner ankle) एक छोटी हड्डी के अवलंबन से दृढी-भूत है। पैर की दूसरी हड्डी, जो नलकास्थि (fibula) कहलाती है, पतली है। यह दीर्घास्थि के साथ संयुक्त है। नलकास्थि का नीचे का सिरा चौड़ा होकर गाँठ-सा बन गया है। उसे वाह्य गुल्फ (outer ankle) कहते हैं। पैर की पाँच प्रपदास्थियों (metatarsal) में से हरएक उंगली के साथ संयुक्त है। वे हाथ की उँगलियों की तरह तीन व्यूहों में रचित है। केवल अँगूठे में दो अस्थिव्यूह हैं। पैरों के अस्थिव्यूह भी, हाथ की उँगलियों की तरह, लंबी हड्डी से संगठित हैं। परंतु प्रांत के व्यूह, हाथ की उँगली की तरह, चौड़े हैं।

द्वितीय अध्याय

पेशी-मंडल

जीव-शरीर में पेशियाँ गति-शक्ति-विधायक यंत्र हैं। इनके आकार और संख्या से शरीर सुंदर और सुडौल होता है। ये हर अंग में हड्डियों के चारों ओर अवस्थित हैं। इनके द्वारा उन स्थानों की रक्षा होती है। किसी-किसी संधि-स्थान की प्रधान रूप से ये ही रक्षा करती हैं। देह में जहाँ छिद्र हैं, वहाँ उनमें व्याप्त पेशियाँ उन्हें ढके हुए हैं। दबाने से ये सब झुक जाती और छोड़ देने पर अपनी हालत में आ जाती हैं।

पेशियाँ मांस के सिवा और कोई पदार्थ नहीं। उनका रंग लाल और आकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण वे भिन्न-भिन्न काम कर सकती हैं। ये समान तंतुओं से गठित हैं। वे पास-पास अवस्थित और कैशिक झिल्ली की बिनावट से एकत्र रक्षित हैं। यंत्र के छोर पर पैशिक तंतुओं का अंत हो गया है। कोषमय गठन बदलकर मांस-पेशियों की बंधनी के रूप में परिणत हो गया है। उसी से मांस-पेशियाँ हड्डी के ऊपर संलग्न हैं।

बंधनियाँ चौड़ी पेशी के बीच विस्तृत हैं। पैशिक ततुओं के विन्यास ने बंधनी के संबंध में आकर विभिन्न रूप धारण कर लिए हैं। कहीं-कहीं वे तंतु लंबे-लंबे, बंधनी में घुसकर, प्रत्येक प्रांत में आकर समाप्त हुए हैं। किसी जगह वे पंखे की तरह

केंद्र की ओर चले गए हैं, और कहीं पर पंख की तरह बंधनी के दोनों ओर अवस्थित हैं।

पेशियाँ देखने में विभिन्न आकार के तंतुओं के पुलिंदे की आच्छादनी से बँधी हुई हैं। हरएक पुलिंदे में छोटे-छोटे तंतु हैं। हरएक पेशी और बंधनी में धमनी, शिरा, शोषक-नाड़ी और स्पर्शानुभावक तथा परिचालक स्नायु है।

मनुष्य के शरीर में पेशियाँ चार सौ से भी अधिक हैं। सब के भिन्न-भिन्न नाम हैं। पर यहाँ उनके लिखने की आवश्यकता नहीं।

पेशी के तंतु संकुचन-क्रिया कराते हैं। उत्तेजक पदार्थ के स्पर्श से पेशियाँ संकुचित होती और उत्तेजना मिट जाने पर शिथिल हो जाती हैं। जिन पेशियों की उत्तेजना से हाथ उठता है, उनमें अगर हम मानसिक बल का प्रयोग करें, तो हाथ उठता है। किंतु यदि मानसिक शक्ति को हटा लें, तो सुदृढ़ पेशी-समूह शिथिल हो जायगा। पेशी-निचय की संकुचन-शक्ति का अनुभव हम शरीर के हरएक काम में कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर कुहनी की टेढ़ाई का उल्लेख किया जा सकता है। मांस-पेशियाँ बंधनी के एक प्रांत में स्कंधास्थि के साथ संलग्न होकर एक निर्दिष्ट स्थान पर क्रिया करती हैं। दूसरे प्रांत की मांस-पेशी-बंधनी हाथ के ऊपर की हड्डी के साथ संलग्न है। जब मांस-पेशी का उदर संकुचित होता है, तब दोनों सिरे परस्पर एक दूसरे के पास आ जाते हैं। इसीसे कुहनी का संधि-स्थान टेढ़ा होता है। इसी नियम से हरएक संधि-स्थान की गति नियमित होती है। जब मांस-पेशी का तंतु-निचय संकुचित होता

है, तब संकुचित स्थान (उदर) कठिन हो जाता है। पेशियों की संकुचन-शक्ति से हम लोग भिन्न-भिन्न काम कर सकते हैं। इसी के कारण किसान खेती का काम करता है, लुहार हथौड़ी चलाता है, ग्रंथकार की लेखनी चलती है, शिकारी शिकार का पीछा करता है, बड़े-बड़े व्याख्यान दिए जाते हैं। हमारे खेल-कूद, नाच-तमाशे भी इसी शक्ति पर निर्भर हैं। केवल अंग चलाना ही पेशी के संकुचन पर निर्भर नहीं है, जीव-शक्ति की हृत्पक्रिया भी उसी से संपादित होती है। हृत्पिंड का स्पंदन, रक्त-संचार, पाकाशय और आँतों की क्रिया, मानसिक क्रियाएँ इत्यादि सब कुछ पेशियों के संकुचन पर निर्भर है। मूर्च्छा की अवस्था में हमको यह मालूम हो सकता है कि मन भी पेशी के अधीन है। उस समय चारों ओर क्या हो रहा है, इसका ज्ञान रहने पर भी मानव-जीवन का किसी प्रकार का चिह्न नहीं देख पड़ता।

जब जीवन के सुख, स्वास्थ्य, आनंद और काम-काज में उल्लास के साथ पेशियों का इतना घनिष्ठ संबंध है, तब जिस नियम से वे नियमित होती हैं, उसका ज्ञान होना परम आवश्यक है। साथ ही यह भी ज्ञान रहना चाहिए कि उनकी स्वस्थता और कार्यकारिता काहे पर निर्भर है।

स्वभाव का नियम यह है कि कोई पेशी जब बार-बार क्रिया करती है, तब उसका तंतु मोटा और सुदृढ़ होता है; तभी वह अधिक विक्रम के साथ काम कर सकती है। यदि पेशियाँ इसके विपरीत क्रिया करें, तो उनका और शक्ति भी घट जायगी।

स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य का पहनावा अगर किसी तरह वक्षःस्थल की पेशी और मेरु-दंड की अप्रतिहत गति को रोके, तो पेशियाँ दुर्बल हो जायँगी। इससे फुसफुस की यथेष्ट विस्तृति में ही केवल बाधा न पड़ेगी, बल्कि जो पेशी मेरु-दंड को धारण करती है, वह भी दुर्बल होकर शरीर को टेढ़ा और रोगों का घर बना देगी।

क्रिया के द्वारा पेशी के परिवर्त्तन का कारण यह है कि धमनी का रक्त शरीर के हरएक यंत्र मे क्रिया के अनुसार संचित होता है। इसके विपरीत, जब किसी यंत्र में पुष्टिकारी रक्त नहीं भरता, तब वह दुर्बल हो जाता है। फिर क्रमशः क्रिया-शक्ति से शून्य हो जाता है। एक हाथ से काम करो, और दूसरे को बाँध रक्खो। कुछ दिन में एक हाथ बड़ा सुदृढ़ और दूसरा हाथ छोटा और कोमल देख पड़ेगा। एक की रक्तवाहिनी नाड़ी की क्रिया प्रबल और दूसरे की दुर्बल हो जायगी।

जब शक्तिहानता, मंदाग्नि और अप्रफुल्लता मालूम हो, तब इस नियम में व्यतिक्रम समझ लेना चाहिए। औषध सेवन करने से पहले हड्डियों और पेशियों के प्राकृतिक नियम से असावधान न होना उचित है। जिस व्यायाम से मांस-पेशियाँ अधिकतर क्रियाशील हों, वही उत्तम है।

बालक किस प्रकार खड़ा होता है, इसके प्रति मा बाप और शिक्षक की विशेष दृष्टि रहनी चाहिए। यदि युवावस्था में बालक झुकना सीखें, तो बुढ़ापे में वे निश्चय ही झुक जायँगे। पीठ की पेशियों का जिस प्रकार से नियमित व्यायाम होता है, वह

अवश्य करना चाहिए; क्योंकि उनके नियमित विस्तृत होने से बालक सीधे खड़े हो सकेंगे। इस प्रकार उन लोगों के कंधे भर जायँगे, और छाती चौड़ी होगी। इसके विपरीत अगर बालकों को सिर और कंधे झुकाए रहने का अभ्यास कराया जाय, तो छाती छोटी और पीठ की पेशियाँ दुर्बल हो जायँगी। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली विरूपता वढ़ने के साथ ही वृद्धि को प्राप्त होती जाती है।

वालकों को सीधे होकर बैठने की शिक्षा देनी चाहिए; क्योंकि उनका स्वस्थ या अस्वस्थ रहना उनकी बैठक पर निर्भर है। पढ़ने या काम करने के समय उनको सीधे होकर बैठना चाहिए; क्योंकि इससे शरीर के भिन्न-भिन्न यंत्र अपना-अपना काम ठीक करेंगे। इस प्रकार उनका स्वास्थ्य बढ़ेगा, और शरीर भी देखने में सुंदर और सुगठित जान पड़ेगा।

बालक जब बेंच पर बैठें, तब ऐसा बंदोवस्त होना चाहिए कि वे पीछे पीठ लगा कर बैठें। पर बालकों का स्वभाव यह होता है कि वे आगे की ओर झुककर बैठने की ही चेष्टा करते हैं। वे अपनी कुहनी डेस्क पर रख लेते हैं। जब बालकों के पीठ लगाकर बैठने का प्रबंध नहीं होता, तभी ऐसा होता है। अतएव मेरु-दंड के झुक जाने की हालत में सबसे अधिक विरूपता होने का खटका है। यदि कोई बालक या बालिका सीधी होकर खड़ी न हो सके, तो उसे खड़ा रक्खो, या किसी चीज़ में पीठ लगाकर बैठने दो। लेकिन कुहनी टेककर सामने की ओर झुकने न दो।

केवल स्कूलों की बेंचों में ही ऐसा प्रबंध न रहना चाहिए। उनका डेस्क या टेबिल इतना ऊँचा होना चाहिए कि उन्हे किताब देखने के लिये सामने न झुकना पड़े।

पेशी-मंडल का स्वाभाविक नियम यह है कि व्यायाम के बाद विश्राम की आवश्यकता होती है। विश्राम की क्यों आवश्यकता होती है, यह बात किसी सभा में जाने से मालूम हो सकती है। वक्ता की वक्तृता सुनने के लिये श्रोतागण उद्ग्रीव होते हैं। उस समय उनकी पेशियाँ काम करने लगती है, और थोड़े समय के बाद ही श्रोताओ में एक प्रकार की अस्थिरता आ जाती है। असल बात यह है कि अधिक देर तक मेरु-दंड उन्नत किए रहने से पेशियों में क्लांति और चंचलता आ जाती है। अधिक देर तक क्रिया करते रहने से पेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं, और क्रमशः उनकी संकुचन-शक्ति लुप्त हो जाती है। स्कूल में छोटे-छोटे लड़के थोड़ी देर बैठने से चंचल हो उठते हैं। इससे समझा जा सकता है कि उन लोगों को कुछ परिवर्त्तन की ज़रूरत है। यह परिवर्तन होने से उनकी अपुष्ट पेशियाँ सबल हो जाती है, और वे मेरु-दंड को फिर ऊँचा रख सकते हैं। बालकों को बहुत देर तक सीधा बैठाए रखना बहुत बुरा है; क्योंकि यह बैठक पेशियों के नियम के विरुद्ध है। इससे मेरु-दंड टेढ़ा पड जाता है।

स्कूलों में जो टिफ़िन की छुट्टी होती है, वह पेशियों की क्रिया से संबंध रखनेवाले नियम के ऊपर प्रतिष्ठित है। पैशिक उत्तेजना के बाद विश्राम की ज़रूरत होती है। इसीलिये बालकों को टिफ़िन की छुट्टी होती है। बालक जितना ही छोटा और

दुर्बल होगा, उतना ही उसे विश्राम आवश्यक होगा। पेशी के फैलने और सिकुड़ने का अनिवार्य फल क्लांति है। इस कारण कार्य और बैठने का ढंग बदलने से थकी हुई पेशियाँ विश्राम पाती और नई पेशियाँ काम में लग जाती हैं। कहना यह है कि परिश्रम का परिवर्त्तन विश्राम की तरह हितकारी है। यह नियम बहुदर्शिता से स्थापित हुआ है। मैं पहले कह चुकी हूँ कि पेशियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। वे स्थान-विशेष की अवस्थिति और शक्ति के अनुसार काम करती हैं। पेशियाँ संचालन-क्रिया के लिये होने पर भी वे स्वयं सचलित नहीं हो सकतीं। वे ऐच्छिक और अनैच्छिक नाड़ी-मंडल के द्वारा परिचालित होकर कार्य में प्रवृत्त होती हैं। सफ़ेद सूत के समान इस नाड़ी-मंडली ने मस्तिष्क की भित्ति और मेरु-दंड से निकलकर पेशियों के साथ मस्तिष्क का संबंध स्थापित कर रक्खा है। अनैच्छिक-शक्ति-संपन्न नाड़ी-मंडली परिपाक, रक्त-संचरण और श्वास-प्रश्वास-संबंधी पेशियों को, जिनका इच्छा-शक्ति के साथ कुछ संबंध नहीं है, उत्तेजित करती है। ये क्रियाएं हम लोगों के जीवन के प्रथम श्वास से अंतिम श्वास तक होती हैं। हम लोग चाहे जागते रहें और चाहे सो जायँ, जान सकें या न जान सकें, क्रियाएँ निश्चय ही होंगी। इच्छा-शक्ति उनको बाधा नहीं पहुँचा सकती।

ऐच्छिक-क्रिया-संबंधी नाड़ी-मंडली मस्तिष्क से निकली है, और वह इच्छा के अधीन है। नाड़ियाँ इच्छा के विचार को पेशियों के पास ले आती हैं, इसलिये उनका समूह संवाद-यंत्र

के सिवा और कुछ नहीं है। मन के किसी काम की इच्छा करने पर ऐच्छिक नाड़ियाँ मस्तिष्क से शक्ति लेती और बिजली की तरह उपयुक्त पेशियों को संवाद देती हैं। पेशियाँ भी संकुचित होकर उस समय काम करने लगती हैं। इस प्रकार जब हम लोग कुछ कहने की इच्छा करते हैं, जब मस्तिष्क ऐच्छिक नाड़ी-मंडली की सहायता से जिह्वा, कंठ और होठों की पेशियों से शक्ति भेजता है, तब वे पेशियाँ संकुचित होकर आवश्यक शब्द उत्पन्न करती हैं।

मस्तिष्क, मेरु-दंड और नाड़ियों का स्वास्थ्य, तत्परता, आकार और गुण पैशिक क्रिया में परिवर्तन ले आता है। मस्तिष्क यदि स्वस्थ रहे, तो उसकी रुग्णावस्था में पेशीनिचय की क्रिया अधिक होगी। यह बात हम लोग टाइफ़स (मोहक) ज्वर, मस्तिष्क-दाह, संन्यासरोग और मद्य-पान की दशा में देख पाते हैं। मस्तिष्क के निष्क्रिय होने से पेशियों की क्रिया भी रुक जाती है। इससे समझा जा है कि नाडी-मंडली का पेशियों के ऊपर कैसा आधिपत्य है। जिन नाड़ियों के साथ पेशियों का संबंध है, उनका यदि ध्वंस हो जाय, तो उनकी संकुचन-शक्ति और चैतन्य-शक्ति लुप्त हो जायगी। किसी जगह नाड़ी यदि दबाई जाय, तो उसकी क्रिया और अनुभव की शक्ति भी घट जाती है। कठिन बेंच के ऊपर अधिक देर तक बैठने से यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है। इस तरह बैठने से यह देख पड़ता है कि नाड़ियों के दब जाने से नीचे के अंग का अनुभव जाता रहता और उसकी क्रिया-शक्ति

भी घट जाती है। कटि-नाडी को, जो पैर तक फैली है, दबाने पर भी इसी प्रकार का फल होता है।

साधारणतः एक ही आकृति के व्यक्तियों में भी पैशिक-शक्ति और तत्परता का प्रभेद देख पड़ता है। यह बात पैशिक तंतुओं के आकार, बुनावट, घनता और मस्तिष्क तथा नाड़ियों की कार्यकारिता पर निर्भर है। घुड़दौड़ में जो घोड़े दौड़ते हैं, उनकी पेशियों की घनता और बुनावट के साथ अगर लद्दू घोड़ों का मिलान किया जाय, तो दोनों में बड़ा अंतर देख पड़ेगा। इसलिये पतली घनी बुनी हुई पेशियों से युक्त, तत्पर मस्तिष्क और नाडीवाले आदमी जैसा स्फूर्त्ति और शक्ति का काम कर सकेंगे, वैसा मोटी और ढीली पेशियोंवाले आदमी, एक ही आकार के होने पर भी, नहीं कर सकते। आदमी की अगर छोटी पेशी और बड़ी-बड़ी कर्मठ नाड़ी हों, तो वह भारी शक्ति दिखला सकेगा। परंतु यदि मस्तिष्क रुग्ण रहे, तो अधिक देर तक शक्ति नहीं रहेगी। गुल्म-वायुरोग (हिस्टिरिया) इसका उत्कृष्ट उदाहरण है कि किसी की पेशियाँ यदि चौड़ी और नाडी छोटी हों, तो वह अधिक शक्ति का काम न कर सकेगा, या ऐसे काम में अधिक तत्परता नहीं दिखा सकेगा। परंतु, सहन-शीलता अधिक होने के कारण, वह अधिक समय तक परिश्रम कर सकेगा। इससे स्पष्ट समझ सकते हैं कि केवल गठन देखकर आदमी की काम करने की शक्ति का अनुमान हम नहीं कर सकते। सूक्ष्म, घनी, पूर्ण और विकसित पेशियाँ,

विशाल नाडी-मंडल और स्वस्थ तत्पर मस्तिष्क होना ही शक्ति, तत्परता और सहन-शीलता का कारण है।

यदि शरीर का पूर्ण विकास चाहते हो, तो बालकों के ऊपर के अंग पर विशेष दृष्टि रक्खो। सबको मालूम है कि जिनका ऊपर का अंग सीधा होता है, वे अधिक देर तक खड़े हो सकते, अधिक घूम सकते और अधिक परिश्रम कर सकते हैं। परंतु जिनका ऊपर का आधा हिस्सा झुक जाता है, वे ऐसा नहीं कर सकते।

यह तत्त्व पैशिक नियम के अनुकूल और दो कारणों से उत्पन्न है। एक तो, पेशी को संकुचित अवस्था में रखना हो, तो उसमें मस्तिष्क से शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। जितना ही कम पेशी संकुचित रहेगी, उतना ही नाड़ी-मंडली की शक्ति कम ख़र्च होगी, और उतना ही कम क्लांति का अनुभव होगा। शरीर का उत्तरार्द्ध यदि ऊँचा रहे, तो शरीर और मस्तक मेरु-दंड की अस्थि और उपास्थियों के ऊपर रख सकता है।

शरीर के सामने कुछ-झुक जाने से मेरु-दंड के पीछे जो पेशियाँ लगी हुई है, वे धीरे-धीरे संकुचित होकर शरीर को खड़ा रक्खेंगी, और पश्चाद्भाग को टेढ़ा कर देंगी। परंतु मेरु-दंड की सामने की पेशियाँ यदि आकुचित हों, तो वैसा नही होने पाता। बस, खड़े शरीर में वह पाछे और आगे केवल थोड़ा हिल सकता है। यह सच है कि टेढ़ी अवस्था में, संकुचित रहने पर मेरु-दंड के पीछे की पेशियाँ शरीर को सामने गिरने नही देतीं; परंतु वे पीठ की पेशियों और वात-शक्ति को हीन

कर देती है। किंतु खड़े रहने से ऐसा नहीं होता; क्योंकि सामने और पीछे कुछ हिलने से क्रमशः संकुचन और शिथिलता उपस्थित होती और उससे स्वास्थ्य ठीक रहता है।

जब पेशी का कोई अंश काम करने लगता है—जैसे घूमने के समय पैर की और अन्यान्य पेशियाँ अधिकतर विश्राम करती हैं—तब नाडी-मंडली की शक्ति कार्य-स्थान में दौड़ जाती है। फल यह होता है कि पेशियों में जल्दी थकन नहीं आती। इसका कारण यही है कि नाड़ी-मंडली की क्षमता अधिकतर पेशी में विस्तृत रहती है। बातचीत करने, पढ़ने, गाने अथवा और कोई परिश्रम का कार्य करने में चेष्टा तभी तक अधिक ठहरती है, जबतक शरीर और मस्तक उन्नत रहता है।

बैठने में भी यही नियम देखा जाता है। जो व्यक्ति झुककर बैठेगा, उसकी पीठ की पेशियाँ संकुचित होकर शीघ्र ही नाडी-मंडली को थका डालेंगी। परंतु खड़े रहने से उतनी जल्दी थकावट न मालूम होगी।

तृतीय अध्याय

रक्त-संचार

हृदय धमनी, शिरा और कैशिका नाड़ियों से रक्त शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में आता-जाता है।

वक्षःस्थल के बाईं तरफ़ के गढ़े में हृदय तिर्छा अवस्थित है। इसका मूल-देश पश्चाद्भाग में दक्षिण कंधे की तरफ है और अगला भाग बाईं तरफ़ के सामने, उरोस्थि से तीन इंच की दूरी पर, पाँचवें और छठे पंजर के बीच में है। इनका निचला हिस्सा वक्ष-उदरमध्यस्थ पेशी (diaphragm) के कंडरा (tendon) के ऊपर अवस्थित है। यह एक कोष से घिरा है। यह कोष pericardium कहलाता है। झिल्ली के भीतर से रस झरकर हृत्पिंड को चिकना करता है। इससे उसका हृद्देश (pericardium) के साथ संघर्ष नहीं होता। स्वस्थावस्था में छोटे चम्मच के लगभग रस झरता है। रोग की में कभी-कभी एक औंस के लगभग रस झर जाता है। उससे हृत्पिंड की धड़कन बढ़ जाती है।

हृदय की तौल आठ औंस से दस औंस तक होती है। यह पेशिक तंतुओं से गठित है। तंतु भिन्न-भिन्न ओर चले गए हैं। कोई-कोई तंतु लंबा है। किंतु अधिकतर पेंच की तरह घूमे

हुए हैं। मनुष्य के हृदय के दो भाग हैं। दाहना और वायाँ। दोनों ओर के प्रकोष्ठ एक परदे के द्वारा अलग-अलग हैं।

हृदय का दाहना भाग भी दो भागों में बँटा हुआ है, ग्राहक-कोष्ठ (auricle) और क्षेपक-कोष्ठ (ventricle)। ग्राहक-कोष्ठ का भीतरी भाग विषम है, और वाहर का भाग समतल। यह देखने मे कुत्ते के कान की तरह है। क्षेपक-कोष्ठ का भीतरी भाग मांस के खंभे की तरह है। यह मांस-स्तंभ Columnæ carneæ कहलाता है। दाहने क्षेपक-कोष्ठ की दीवार वाएँ की अपेक्षा पतली है। दक्षिण क्षेपक-कोष्ठ से शिराओं का रुधिर, फुसफुस की धमनी (pulmonary artery) से होकर, फुसफुस में जाता है। धमनी के आरंभ में तीन द्वार हैं। हृदय के वाम दिशा के ग्राहक-कोष्ठ और क्षेपक-कोष्ठ के वीच में दो त्रिकोण द्वार (mitral) हैं। वे उसके संयोग-रंध्र की रक्षा करते हैं। वे tricuspid valve से मोटे और दृढ़ हैं; क्योंकि वाम दिशा के क्षेपक-कोष्ठ-समूह (ventricle) के परदे की संकुचन-शक्ति दक्षिण क्षेपक-कोष्ठ से अधिक है। उक्त द्वार के खुले हुए किनारे में छोटे-छोटे कंडरामय (tendinous) सूत्र ग्रथित हैं। इन सूत्रों से क्षेपक-कोष्ठ के अभ्यंतर में स्थित मांस-स्तंभ-समूह के साथ उक्त द्वार का संयोग है।

वाम ओर के क्षेपक-कोष्ठ से वृहत् धमनी निकली है। अँगरेज़ी में इसको Aorta कहते हैं। यह हृदय में रहता है। धमनी-संवंधी व्यापार में इसे प्रधान रास्ता समझना

चाहिए। धमनी-संबंधी रुधिर इसके द्वारा जाकर सारे शरीर में व्याप्त होता है।

हृदय के क्षेपक-कोष्ठों का स्थान प्रायः समान है। तथापि बाईं ओर के परदे दक्खिन ओर के परदों से मोटे हैं। उनकी संकुचन-शक्ति में भी अंतर है। दक्खिन ओर का पतला परदा स्वस्थावस्था में कोमल और नमनीय फुसफुस में रक्त संचालित करने की सामर्थ्य रखता है। बाईं ओर का परदा, अधिक मोटा होने के कारण, शरीर के अपेक्षाकृत घने स्थान में रक्त भेजने की शक्ति रखता है।

हृदय में धमनियाँ और शिराएँ हैं। वे पैशिक तंतुओं में जाकर सम्मिलित हुई हैं। उक्त धमनियों में शिराओं से रुधिर आता-जाता है। इसमें थोड़ी शोषक नाड़ी और बहुत स्पंदजनन नाडी-सूत्र (filament) हैं।

धमनियाँ स्थिति-स्थापक और स्तंभ-सदृश नल-जैसी हैं। ये हृदय से रक्त लेकर शरीर के सब स्थानों में पहुचाती हैं। ये सब पास-पास घनी हैं। रक्त-हीन होने पर ये स्तंभ का-जैसा आकार धारण कर लेती और मृत्यु के बाद इसी अवस्था में रहती हैं। पूर्वकाल में लोग इन्हें वायु की नली समझते थे। उन लोगोंको विश्वास था कि इन नलियों से शरीर में प्राण-वायु परिव्याप्त होता है। इसीलिये वे लोग इन्हें वायु-नली समझते और कहते थे। इनके तीन आच्छादनी होती हैं। बाहर की दो आच्छादनी कठिन और दृढ़ हैं। बीच की आच्छादनी पीले तंतुओं से गठित है। यह आच्छादनी स्थिति-स्थापक, भंगुर और

वाहरी आच्छादनी से मोटी है। यह, स्थिति-स्थापक होने के कारण, नल-रक्त को धारण कर सकती है। भीतर की आच्छादनी पतली और रुधिर-जल-स्राविनी झिल्ली के समान हैं। यह झिल्ली धमनी के भीतर देख पड़ती है, और इसलिये इसका वाहरी अंश चिकना है। यह हृदय का आवरण झिल्ली सर्वत्र व्याप्त है।

धमनियाँ शिराओं में जाकर समाप्त नहीं हुई हैं। वे देह में जाकर समाप्त हुई हैं। यह नलमय शरीर, अत्यंत छोटा होने के कारण, कैशिका (Capillaries) कहलाता है। धमनी के वीच में जो सड़कें हैं, वे संख्या में अनेक और खुली हुई हैं। शाखाओं का आकार जव घट जाता है, तव वे वढ़ जाती हैं। वे शिथिल कोषमय ढकनी से आवृत हैं। यह आच्छादनी उनको चारों ओर की झिल्ली से अलग रखती है। आच्छादनी में भी शिरा और कहीं-कहीं नाड़ी हैं। धमनी की आच्छादनी में भी, शिराओं के अन्यान्य अंग-प्रत्यंगों की तरह, रुधिर-संचार होता है, और उसमें नाड़ियाँ भी रहती हैं।

दक्षिण क्षेपक-कोष्ठ की जड़ में फुसफुस की धमनी का प्रारंभ है। यह वृहद्धमनी के मेहराव के नीचे टेढ़ी होकर दो शाखाओं में वँट गई है। एक शाखा दक्षिण फुसफुस में और दूसरी वाएँ फुसफुस में चली गई है। ये दोनों शाखाएं भी फुसफुस में जाकर शाखा-प्रशाखाओं में वँट गई हैं। यह फुसफुस की धमनी फुसफुस में मैला रक्त ले जाती है। हृदय के वाएँ क्षेपक-कोष्ठ शुद्ध रुधिर वहता है। इस कोटर से वृहद्धमनी (Aorta) की उत्पत्ति है। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ सारे शरीर में परिव्याप्त हैं।

वृहद्धमनी पहले दाहनी ओर उठकर फिर बाईं ओर टेढ़ी होगई है, और हृदय के पीछे, मेरु-दंड के बाईं ओर, उतर गई है। इस वृहद्धमनी के आरोहणी और अवरोहणी नाम के दो विभाग हैं। वक्षःस्थल के कोटर में यह धमनी वक्षःस्थल की धमनी (thoracic aorta) और उदर में उदर-धमनी कहलाती है।

मस्तिष्क में रुधिर चार द्वारों से प्रवेश करता है। सामने के दोनों द्वारों का नाम दक्षिण-नीला-धमनी और वाम-नीला-धमनी है, जिन्हें अँगरेज़ी में carotid, arteries कहते हैं। मस्तक के पीछे के दो द्वारों का नाम दक्षिण और वाम काशेरुकी धमनी (vertebral arteries) है। मस्तिष्क के कोमल स्थान में सहसा और ज़ोर से रुधिर न प्रवेश कर सके, इसके लिये यहाँ पर जो कौशल देख पड़ता है, उसे देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। करोटी के बीच में घुसने के पहले धमनियों को बड़ी और घूमी हुई राह से अनेक बाधाओं का सामना करके जाना पड़ता है। इसी से रुधिर की गति का ज़ोर घट जाता है। चारों भिन्न-भिन्न धमनियों से होकर करोटी में घुसने के बाद, रुधिर मस्तिष्क के नीचे जमा होता है। उसके बाद वह मस्तिष्क में प्रवेश करता है।

पाकस्थली में रक्त केवल मुकुट-धमनी होकर ही नहीं प्रवेश करता, प्लीहा और यकृत् से जो धमनी पाकाशय में गई हैं, उनसे भी वह पाकस्थली में जाता है। इन धमनियों की विशेषता यह है कि अलग-अलग तीन जगह से उठने पर भी एक ही जगह मिल गई हैं। आँतों के विभिन्न स्थानों में जो धमनियाँ

गई हैं, उनका भी तदनुरूप प्रबंध है। धमनी से जिस प्रकार मस्तिष्क में रक्त जाता है, उसी प्रकार का यहाँ भी प्रबंध है। देह की पुष्टि, पाकस्थली की अप्रतिहत क्रिया, पेशियों की विविध क्रियाएँ और मस्तिष्क की चेष्टा, ये सब काम रक्त-सचार के ऊपर निर्भर हैं। यदि कोई धमनी दब जाय, या रोग से ध्वंस को प्राप्त हो जाय, तो भी, धमनियों के एकत्र रहने का प्रबंध रहने के कारण, उनमें रुधिर-संचार हो सकता है। यदि किसी वृहत् धमनी को बाँध कर, अथवा अन्य किसी प्रकार से, उसमें रुधिर को न घुसने दिया जाय, तो छोटी-छोटी सम्मिलित धमनियाँ जो विशेष कार्य करती हैं, वह अधिक हो जाता है, और उस स्थान की पुष्टि को घटने नहीं देता।

शरीर के विभिन्न व्यूह-तंतुओं (tissue) में धमनियों के द्वारा रुधिर घुसने के बाद शिराएँ रुधिर को हृदय में भेज देती है। शिराएं आकार में धमनियों से छोटी है। वे रक्त-सचार-हीन होने से होकर ध्वंस को प्राप्त होजाती है। दैहिक रक्त-संचरण-प्रणाली में शिराएं काले-काले, गाढ़े रक्त को हृदय के दक्षिण ग्राहक-कोष्ठ में ले जाती हैं। मृत्यु के बाद वे रुधिर से थोड़-बहुत फूली हुई देख पड़ती हैं। फुसफुस की रक्त-संचरण-प्रणाली में शिराएँ दैहिक रक्त-संचरण-प्रणाली की धमनियों के समान हैं। जीवितावस्था में वे विशुद्ध रुधिर को फुसफुस की कैशिकाओं से दक्षिण ग्राहक-कोष्ठ में भेजती हैं।

शिराएँ कैशिका नाड़ी में छोटे-छोटे बीजों के अकुरों के समान शुरू होती हैं। शरीर में सब जगह वे फैली हुई हैं।

क्रमशः वे शाखा-प्रशाखाओं में फैलकर, कांड के रूप में परिणत होकर, शिराओं के रक्त को हृदय में पहुंचाती हैं। इनका घेरा धमनी से बहुत बड़ा है। शिराओं के बीच में जो मार्ग हैं, वे धमनी के मार्गों से अधिक बड़े और छोटे नल के भीतर हैं। यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि वे क्यों एकत्र हैं। उनका आवरण पतला होने के कारण उनको बहुत सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। अतएव वे सम्मिलित न होते, तो काम न चलता।

धमनी की तरह शिराओं की भी पुष्ट नलियाँ हैं। यह भी जाना जाता है कि स्पंद-जनन नाड़ी-सूत्र ganglionic से उनकी आच्छादनी में फैला हुआ है।

शिराओं की तीन आच्छादनी है—बाह्यिक, मध्यस्थ और आंतरिक। बाह्यिक आच्छादनी घनी और दृढ़ तथा देखने में धमनी के कोषमय कुर्ते के समान है। मध्यस्थ आच्छादनी, धमनी की तरह तंतु जैसी और बहुत ही पतली है। आंतरिक आच्छादनी धमनी की तरह रक्तांबुस्राविनी है। ये सब एक ओर हृदय की झिल्ली की आच्छादनी के साथ और दूसरी ओर कैशिका-नाड़ी की झिल्ली की आच्छादनी के साथ सन्निविष्ट हैं। आंतरिक आच्छादनी में, बीच-बीच में, तहें देख पड़ती हैं। ये तहें द्वार है। नली के दोनों ओर दो-दो तहें रहती हैं। द्वार की तह हर एक तह का खुला हुआ सिरा पोला और सामने ही अवस्थित है; क्योंकि रुधिर-प्रवाह के हृदय की ओर दौड़ने पर वे किसी तरह उसकी गति में रुकावट नहीं डालतीं। किंतु यदि प्रकार उस गति में किसी तरह का विपरीत भाव उपस्थित

हो, तो वे फूलकर रक्त की गति में रुकावट डालती हैं। हाथ और पैर की शिराओं में द्वार अधिकतर देख पड़ते हैं। ख़ास कर गहरी शिराएं पेशी के बीच में अवस्थित हैं। किसी-किसी छोटी शिरा में कोई द्वार नहीं है।

कैशिका-नाड़ी शरीर में सर्वत्र फैली हुई है। वे बहुत ही सूक्ष्म और केवल अणुवीक्षण-यंत्र से देख पड़ती हैं। यदि चमड़े में सुई चुभोई जाय, तो वह उनमें से कुछ को आघात पहुंचाए बिना भीतर नहीं घुस सकती। कैशिका-नाड़ी के द्वारा शरीर में पुष्टि और क्षरण-क्रिया का संपादन होता है। सबका व्यास समान है। वे धमनी के प्रांत और शिरा के आरंभ में सम्मिलित हुई हैं। रुधिर के पुष्टिकारक पदार्थों से हड्डी, पेशी इत्यादि बनाने की क्रिया कैशिका-नाड़ी में होती है। कैशिका-नाड़ी जिन पदार्थों को जमा करती है, उनको अगर संपूर्ण रूप से शोषक नाड़ी निकाल न सके, तो मनुष्य मोटा हो जाता है।

हृदय में स्थित कोटर के परदे पेशिक तंतुओं से गठित हैं। वे, शरीर के अन्यान्य स्थानोंके पेशी-मंडल की तरह, संकुचित और शिथिल हो सकते हैं। हृदय की पेशियों का संकुचन और शिथिलता ग्राहक-कोष्ठ और क्षेपक-कोष्ठ के गहरों को घटाती-बढ़ाती है। यह हृदय के हर एक स्पंदन में होता है।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि धमनी, शिरा और कैशिका-नाड़ी से हृदय में और वहाँ से अन्यत्र रुधिर बहता है। रक्त के यथोचित रूप से सर्वत्र पहुँचने के लिये इनकी विशेष आवश्यकता

है। हृदय के पैशिक परदे का संकुचन होने पर रुधिर पहले हृदय से वहकर धमनी में जाता है। हृदय के संकुचन की शक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की है। स्वास्थ्य और शरीर की अवस्थाएँ उक्त संकुचन में अंतर ले आती हैं। हृदय की पेशी की शक्ति कैसी और कितनी है, इसका अनुमान करना कठिन है। परंतु अन्यान्य पेशियों और कटी हुई धमनी से जो ज़ोर से रक्तस्राव होता है, उसको देखकर यह अनुमान होता है कि हृदय की पेशी की शक्ति वहुत ही अधिक है। दूसरे, धमनी की लोचदार, स्थिति-स्थापक आच्छादनी रुधिर को शरीर की छोटी-छोटी नलियों में भेजने के काम में हृदय को विशेष सहायता करती है। तीसरे, छोटी-छोटी कैशिका नाड़ियों की क्रियाओं को शरीर-तत्त्व के विद्वान् धमनी के रक्त-संचार का संचालक समझते हैं।

शैरिक आच्छादनीके संकुचन और हृदय, धमनी तथा कैशिकानाड़ी की स्पंदन-शक्ति के प्रभाव से रुधिर शिरा के भीतर होकर हृदय में लौट आता है। इसके शक्ति-हीन होने के कारण रुधिर तुरंत रुक जाता है। अन्यान्य आनुषंगिक कारण भी शैरिक संचरण के ऊपर प्रभाव डालते हैं। उनमें हृदय की शोषण-शक्ति भी एक है। इससे हृत्पिंड में रुधिर खिंचता है। शरीर-तत्त्व के जाननेवाले लोग श्वास लेने को दूसरा कारण वतलाते हैं। इससे शिरा का रक्त वक्षःस्थल के गह्वर में आकर्षित होता है। किंतु इनमें प्रवल कारण, जो शैरिक संचरण के ऊपर प्रभाव डालता है, शैरिक शरीर के ऊपर पेशी की वारंवार

होनेवाली क्रिया है। पेशियों के संकुचित होने पर उनके भीतर की शिराएं दब जाती हैं, और उनके द्वारा रुधिर एक द्वार से दूसरे द्वार में हृत्पिंड की ओर खिंच आता है। जब पेशियाँ शिथिल होजाती हैं, तब शिराएं फिर भर जाती हैं, और पेशी का हृदय बारंबार की क्रिया से दब जाता है।

हृदय जिस प्रबलता से शैत्यिक संचारण करता है, उससे भी अधिक प्रबलता से पेशियाँ दैहिक संचरण करती हैं। विश्राम में जितना स्पंदन घट जाता है, उतना ही कसरत में बढ़ जाता है। और, अधिकतर अंग-संचालन से स्पंदन की गति कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यायाम के समय हृदय की द्रुत गति ही शरीर के भीतर होकर रुधिर के शीघ्र लौट आने का यथेष्ट कारण है। विश्राम के उपरांत हम लोगों की पेशियाँ अधिक संख्या में सहसा क्रिया करती हैं। जैसे बैठे-बैठे सहसा खड़े होजाने पर हृदय में बहुत ही जोर से रुधिर आता है। हृदय यदि रुग्ण रहे, तो अधिक मात्रा में रुधिर का भीतर आना मृत्यु का कारण होता है। इस कारण जिन लोगों का हृदय दूषित है, उन्हें सहसा या बहुत अधिक व्यायाम न करना चाहिए।

रक्त दो वस्तुओं से बनता है। जलीय अंश (serum) और कठिन अंश (coagulum) से। कठिन श्वेत पदार्थ है, जो ऊपर संचित होता है। लोहे के रहने से रुधिर का लाल रंग होता है।

साधारणतः हर एक तीन मिनट में रुधिर सर्वत्र घूम आता

है। जवानों के मिनट में ७५ वार, वच्चों के १४० वार और बुड्ढों के ६० वार हृदय में स्पंदन होता है। शरीर के पूरे वज़न का $\frac{१}{२०}$ भागरु धिर ही है। हृत्कोटर के हर एक संकुचन में दो औंस के लगभग ख़ून वहता है। इस हिसाव से तीन मिनट में ३५ पौंड, हर घंटे में ७०० पौड और हर चौवीस घंटे में १६,००० पौंड या आठ टन ख़ून हृदय से होकर जाता है।

यदि शरीर का कोई अंश रक्तहीन होजाय, तो उसकी जीवनी-शक्ति लुप्त होजाती है। परंतु यदि रुधिर परिमाण में घट जाय, तो केवल स्वास्थ्य और वल घटता है। और, यदि रुधिर के उपादान में परिवर्त्तन हो जाय, अर्थात् रक्त दूषित हो जाय, तो शरीर के भिन्न-भिन्न यंत्रों की क्रियाएँ विश्रृंखल होकर अनेक तीव्र रोगों को उत्पन्न कर देती है।

क्या करने से शरीर में सव जगह ठीक-ठीक रक्त-संचार हो सकता है, इस वारे में कुछ नियम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) शरीर के सव स्थानों का कपड़ा ढीला रहना चाहिए। कस कर वस्त्र पहनने से, दवाव पड़ने के कारण, रुधिर के आने-जाने में रुकावट पड़ती है। हृदय के वारे में तो यह वात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए; क्योंकि उसी के गह्वर में फुसफुस, हृत्पिंड, वृहत् धमनी और शिराएँ हैं। जो रुधिर मस्तिष्क में आता और वहाँ से वाहर नि है, वह गर्दन से होकर आता जाता है। गर्दन के ऊपर का वस्त्र यदि कसा हुआ हो, तो रक्त-संचरण में रुकावट पड़ती है, और मस्तिष्क की क्रियाएं भी ढीली पड़ जाती हैं। छात्र, वक्ता, मृगी-रोग-ग्रस्त

और मस्तिष्क-रोग-ग्रस्त को यह बात विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए।

चमड़े के ठीक नीचे अनेक बड़ी-बड़ी शिराएं रहने के कारण रुधिर नीचे से लौट आता है। अगर मोजों को ऊँचा रखने के लिये गेटिस और कमर में कमरबंद कसकर बाँधा जाय, और वह स्थिति-स्थापक न हो, तो रुधिर के जाने में रुकावट पड़ने से बृहत् शिरा को फुला देता है। इसलिये हर एक बंधन का ढीला रहना बहुत ज़रूरी है।

(२) शरीर में सब जगह एक-से ताप की आवश्यकता है; क्योंकि शरीर के किसी अंग में ठंडक लगने पर उस जगह की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ आकार में छोटी हो जाती हैं, और जो रुधिर उस ठंडे अंग को फुलाता, वह दूसरे अंग में संचित होता है। ठंडे अंग में रुधिर न रहने के कारण वह दुर्बल हो जायगा, और दूसरे अंग में रुधिर अधिक होने के कारण रोग उत्पन्न हो जायँगे।

केवल चमड़े को ही एक-सा गरम न रखना चाहिए। अंगों को कपड़े की गरमाहट से इस तरह गरम रखना चहिए कि किसी प्रकार रक्त-संचरण-नाड़ियों को ठंडक संकुचित न कर सके। यदि चमड़ा गरम न रहेगा, तो रक्त शरीर के ऊपर से हट आकर भीतर के यंत्र में संचित होगा। चमड़े और पोशाक का सफ़ा होना बहुत ज़रूरी है; क्योंकि उससे त्वक्-नलियों की क्रिया अच्छी तरह होती है।

(३) रुधिर, पेशी की क्रिया से, धमनी और शिरा के भीतर

होकर जाता है। अतएव शरीर और हाथ-पैरों में रक्त-संचरण होने के लिये, और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये, नित्य पेशी-मंडल के नियमित व्यायाम की आवश्यकता होती है। जिन आलसी व्यक्तियों का चमड़ा विवर्ण और हाथ-पैर ठंडे होते हैं, उनके शरीर के रुधिर को द्रुतगामी करने के लिये पेशियों का नियमित व्यायाम, सुखदायक मानसिक क्रिया, चमड़े को नियमित घिसना और शीतल-जल से स्नान, ये सबसे अच्छे उत्तेजक उपाय हैं।

(४) पेशियों के अलस रहने पर निर्दिष्ट समय के भीतर जो रुधिर हृत्पिंड और फुसफुस में जाता है, उससे अधिक रक्त पेशी-मंडल की प्रबल क्रिया से जाता है। श्वास-यंत्र की द्रुत गति होने के पहले यदि रुधिर फुसफुस और बृहत् शिरा में प्रवाहित हो, तो छाती फूल जायगी, और कष्ट का अनुभव होगा। उसके साथ ही हृदय की प्रबल और विश्रृंखल क्रिया संघटित होगी। वक्षःस्थल के कोटर में इस प्रकार की अवस्था होने से उसको रक्त-संचय कहते हैं। रक्त-संचय को अंगरेज़ी में (congestion) कहते हैं। उस । में खाँसी, फुसफुस का फूलना, हफनी और हृदय के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कभी हम लोगों को थोड़े समय में अधिक रास्ता चलना हो, या दौड़ना हो, अथच उक्त अवस्था से बचना चाहें, तो चाहिए कि पहले बहुत तेज़ी से न चलकर नियमित गति से चलें। जितनी जल्दा साँस चले, उतना ही, उसी क्रम से, गतिकी तेज़ी भी बढ़ानी चाहिए। इससे फुसफुस में यथेष्ट वायु घुस कर रक्त को शुद्ध करेगा।

परिश्रम करने के पहले और घोड़े की सवारी करने के समय इस नियम को स्मरण रखना चाहिए।

किसी ने विशेष रूप से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हम लोगों को स्वास्थ्य के लिये विशुद्ध रक्त की आवश्यकता है। रक्त को शुद्ध रखने के लिये चमड़े, पेशी, हजमियत और श्वास-प्रश्वास के ऊपर हम लोगों को विशेष दृष्टि रखनी चाहिए।

१—यदि रक्त दूषित हो, तो पेटेंट (patent) दवाओं से वह शुद्ध नहीं हो सकता। शरीर की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ जब अपना काम नहीं करतीं, तब शरीर का क्षयीभूत पदार्थ संचित होने से रक्त दूषित हो जाता है। कपड़ा यथेष्ट न रहने से, अथवा आवरणके अभावके कारण, रक्तवाहिनी नाडियाँ अपना काम नहीं करतीं। ऐसी अवस्था में पोशाक और स्नान पर विशेष दृष्टि रखने से रक्त शुद्ध हो सकता है।

२—अन्नरस (chyle) की कमी अथवा विगुणता के कारण रक्त का दूषित होना संभव है। आहार के अनुपयोगी परिमाण या गुण से, अथवा अन्न के अयथारूप से खाने से, या असमय, में भोजन करने से ऐसी अवस्था उपस्थित होती है। ऐसी दशा में भोजन के ऊपर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। इस विषय में पीछे जो कहा गया है, उसका ख़याल रखना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

नाड़ी-मंडल

नाड़ी-मंडल कुछ तंतुश्रेणियों से गठित है। वे तंतु प्रत्येक झिल्ली के कोने और छिद्र मे घुसे है। वे किसी-किसी विशेष स्थान में खिंचकर घनिष्ठ भाव से परस्पर संबंध-युक्त भी पाए जाते हैं। ये स्नायु झिल्ली के हरएक काम के शासक और नियामक हैं। ये भिन्न-भिन्न अंगों की गति को समान या उसका सामंजस्य करते है। ये हरएक अंग की इच्छा संबंधी क्रिया के ही नहीं बल्कि इच्छा से न संबंध रखनेवाली क्रियाएँ, जैसे हृदय के स्पंदन, पाचक रस के क्षरण और क्षय हुए पदार्थों के मूत्रग्रंथि से निःसरण आदि के भी शासक हैं। नाड़ी-मंडल उन तंतुओं को भरता है, जो झिल्ली से उत्तेजना और संवाद को ले जाते और अनुभव, बुद्धि और इच्छा-शक्ति का आधार हैं।

यदि हम लोग इस अद्भुत नाड़ी-मंडल पर ध्यान दें, तो यह विदित होगा कि वह केंद्रिक, स्नैहिक और पारिधिक-नाडी नाम के तीन भागों में विभक्त है। केंद्रिक नाड़ी-मंडल करोटी के गह्वर में स्थित मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से गठित है। मस्तिष्क एक यंत्र-विशेष है। इसका वज़न तीन पौंड से भी

अधिक और रंग धूसर वर्ण का श्वेत है। इसके ऊपरी हिस्से में बहुत-सी तहें हैं। इसमें दो बड़े पंखे-जैसे पदार्थ हैं। ये बृहत् मस्तिष्कार्द्ध (cerebral hemispheres) कहलाते और इस यंत्र के अधिकांश स्थान को घेरे हुए हैं। बृहत् मस्तिष्कार्द्ध अनुभव, बुद्धि और इच्छा शक्ति का आधार है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि वह जीव-देह के व्यक्तित्व का परिचायक, और इस कारण शरीर का उत्तम और प्रभेद-निर्देशकारी अंश है। मस्तिष्कार्द्ध के पिछले सिरे के नीचे छोटे-छोटे स्नायु-तंतु अवस्थित हैं। ये देखने में ठोस गोभी के फूल की तरह हैं। इस अंश को लघु मस्तिष्क (cerebellum) कहते हैं। इसके नीचे एक कोमल कंद (bulb) है। उसको पृष्ठवंशीय मज्जा के ऊपर स्थित वृहत् अंश (medula oblongata) कहते हैं। यह श्वास-प्रश्वास, रुधिर-संचालन, ग्रंथि से स्राव और अन्यान्य आवश्यक क्रियाओं का केंद्र-स्वरूप है। आघात से रक्षा करने के लिये यह झिल्लियों से ढका हुआ है। इसकी कुछ झिल्लियों के भीतर रस-स्राव होकर एक प्रकार का जलीय स्नान होता है। सुषुम्ना भी ऐसी ही झिल्ली से ढकी हुई है। यह नाड़ीमय झिल्ली का एक मोटा नल-सा है, और इसके भीतर एक पनाली है। कपोटी के तले से एक छिद्र के भीतर होकर पृष्ठ-वंशीय मज्जा के उपस्थित वृहत् अंश (medulla oblongata) को नाँघकर उसके बाद विपरीत प्रांत तक प्रथम कटिस्थ अस्थिका चली आई है। सुषुम्ना के द्वारा शरीर की नाड़ियाँ मस्तिष्क से मिली हैं। मस्तिष्क से निकली हुई बारह नाड़ियां

को छोड़कर सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना से निकली हैं। सुषुम्ना के बीच में वह केंद्र है, जिससे प्रस्राव, मल-त्याग आदि क्रियाएँ शासित होती हैं।

स्नैहिक नाड़ियों का मंडल (Sympathetic nervous system) भीतर के यंत्रों और रक्तवाहिनियों को शक्ति देता है। हरएक दो नाड़ियों से सुषुम्ना की विशेष छोटी-छोटी शाखाएं निकली हैं। वे मेरु-दंडके ऊपर और नीचे निकली हुई वैसी ही शाखाओं से मिल गई हैं। उनके संगमस्थान में जो झिल्लियों की स्फूर्ति देख पड़ती है, उस को ganglion कहते हैं। ये ganglion-समूह शृंखला के आकार में एकसाथ ग्रथित होकर मेरु-दंड के सामने हर ओर हैं। ग्रीवा में तीन जोड़ी नाड़ी-गंड हैं, किंतु वक्षःस्थल और उदर में इनकी एक ही जोड़ी है। अर्थात् हरएक कशेरुका के सामने की हरएक दिशा में एक-एक नाड़ी गंड है। ये शाखाओं, आँतों और रक्त-वहा नाड़ियों को शक्ति देते और उनकी क्रियायों के ऊपर आधि-पत्य करते ।

पारिधिक नाड़ी-मंडल नाड़ियों से गठित है। यह मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से निकल कर शरीर में सब जगह व्याप्त है, और इसकी मुख्य शाखाएँ, धमनी की तरह, अनेक प्रशाखाओं में विभक्त हुई हैं। प्रत्येक नाड़ी एक-एक तंतुओं की गठरी से संग-ठित है। उनमें कुछ तो केंद्रस्थ नाड़ी-मंडल में संवाद ले जाने का काम करती हैं, और कुछ नाड़ी-मंडल से संवाद ले आती हैं। इस प्रकार नाड़ी से सारा शरीर, टेलिफ़ोन के केंद्रस्थ दफ़्तर की तरह,

मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा के साथ संबंधयुक्त है। व्यूह-तंतुओं की क्रिया की ख़बर को सदा सामने और पीछे के नाडी-मंडल पहुचाते हैं। यहाँ तक कि निद्रा के समय में, जब मस्तिष्क का उच्चतर केंद्र विच्छिन्न होता है तब भी, सुषुम्ना-शीर्षक (medula oblongata) से सदा संवाद, रक्त-संचालन, श्वास-प्रश्वास और मल-निःसरण यंत्र में वाहित होकर, उनकी क्रिया को नियमित करता है।

बारह नाड़ियों ने मस्तिष्क के प्रत्येक पार्श्व से निकल कर निकटस्थ स्थानों को व्याप्त कर रक्खा है। प्रथम दो 'घ्राण (olfactory)-नाड़ियाँ' नासिका में और द्वितीय दो 'दर्शन-नाड़ियाँ चक्षु में है। तीसरी दो नाड़ियाँ कुछ पेशियों मे जाकर अक्षिगोलक में गति-संचार करती है। चौथी दो नाडियाँ अक्षि-गोलक की दूसरी पेशी मे है। पाँचवीं दो नाडियाँ चर्वण-यंत्र की पेशी, मुख और जिह्वा के अनुभव-स्थान में है। छठी दो नाड़ियाँ चक्षु-गोलक की बाहरी पेशी में है। सातवीं दो मुख की पेशी में और आठवीं दो श्रवणेंद्रिय-सूचक नाड़ियाँ (auditory) कान मे हैं। नवीं दो गले की पेशी जिह्वा के अनुभव-स्थान मे है। दसवीं दो नाड़ियाँ कंठ-नली, हृत्पिंड, फुसफुस, गले की नली, पाकाशय, आँत और यकृत् मे हैं। ग्यारहवीं दो नाड़ियाँ ग्रीवा की कुछ पेशियों में और बारहवीं दो नाड़ियाँ जिह्वा की पेशियों में है।

सुषुम्ना की नाड़ियाँ भी दो-दो एक साथ अंकुरित हैं। उनमें से हरएक नाड़ी सुषुम्ना के कशेरुका-संगम-स्थान से निकल कर

भीतर के कशेरुका-संगम-स्थान की ओर निकल गई है। इन नाड़ियों से शाखाएँ निकल कर प्रकांड (trunk) की पेशी के सामने और पीछे निकल गई हैं। परंतु जहाँ ऊपर और तले के अंग मिलित हुए हैं, वहाँ प्रायः नाड़ियों के मिल जाने से नाडी-जाल (plexus) बन गए हैं, और उन नाड़ी-जालों से हरएक अंग की नाड़ियाँ निकली है। पाँचवी, छठी, सातवीं और ग्रीवा की आठवीं कशेरुका-नाड़ियाँ तथा पीठ की प्रथम कशेरुका-नाड़ी से हाथ का नाड़ीजाल (bracshial plexus) बना है। इन मज्जाओं से कुछ प्रधान नाडियाँ निकली हैं। उनमें जो पेशिक त्वक् कहलाती हैं, और जिन्हें अँगरेजी में musculo cutaneous कहते हैं, वे द्विशिरस्का पेशी (biceps), अन्यान्य पेशी और अग्रबाहु के थोड़े-से चमड़े के साथ मिली हैं। इनको मध्यस्थ (median) कहते हैं। ये अग्रबाहु और हाथ की सामने की पेशियों से संलग्न हैं। अलना-नामक जो प्रकोष्ठ की नाड़ी है, वह अग्र-बाहु, हाथ के सम्मुखस्थित आभ्यंतरीण पेशी और हाथ के चमड़े के भीतर चला गया है, और पैशिक पेंच (musculo-spiral) कहलाती है। वह अग्रबाहु के पीछे स्थित पेशी तथा प्रायः चमड़े के साथ मिली हुई है।

नीचे के अंग के दो नाड़ी-जाल हैं। एक कटि-नाड़ी (lumbar), और दूसरा त्रिकस्थि (sacral)। प्रथम चार कटि-नाड़ियों से शाखाएँ निकलकर कटि-नाड़ीजाल को बनाती हैं। इनसे नाड़ी निकलकर चमड़े में गई हैं। इनके सिवा सम्मुख-जंघा (anterior crural) और रोधकी (obturator) नाम की

दो विशेष आवश्यक शाखाएं भी निकली हैं। पहला नाड़ीजाल ऊरू के सामने की पेशी और उसके 'चमड़े मे फैला है। इसकी एक प्रशाखा, जो आभ्यंतरीण-जंघा-शिरा (internal saphenous) कहलाती है, पैर और ऊरू की आभ्यंतरिक पेशी में प्रविष्ट है। रोधकी-नामक नाड़ी ऊरु की आभ्यंतरिक पेशी मे फैली है।

पंचम अध्याय

पाक-यंत्र

हनु, मुख, लाला-ग्रंथि, गला (pharynx), अन्न-प्रनाली (œsophagus), आमाशय, छोटी और वड़ी आँते, लसिका-नली (lacteals), महालसिकावाहिनी (thoracicduct), यकृत्, प्लीहा और क्लोम (pancreas) से पाकयंत्र संगठित है।

उदर एक वड़ा गढ़ा-सा है। इसके सामने और आस-पास निम्नस्थ पंजर और उदर-संबंधीय पेशियाँ है। ऊपर वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) और नीचे वस्तिगह्वर अवस्थित है। वस्तिगह्वर को अँगरेजी में pelvis कहते है। उदर में आमाशय, आँतें, यकृत्, क्लोम, प्लीहा और मल निकलने के यंत्र है।

मुख में चर्वण और आस्वादन का यंत्र है। उसमें छः लाला-ग्रंथियाँ है, तीन मुख के एक ओर, और तीन दूसरी ओर। इनमें जो दो वड़ी ग्रंथियाँ है, उन्हें कर्णाग्रवर्ती लाला-ग्रंथियाँ कहते है। ये कान के वाहर सामने की ओर और हनु के कोने के पीछे अवस्थित हैं। इन लाला-ग्रंथियों के द्वार मुख के भीतर है, और और वे ऊपरी हनु के द्वितीय चर्वण-यंत्र की उलटी ओर खुले है। निम्न हनु में स्थित दो लाला-ग्रंथियाँ (sub-maxillary gland) नीचे के हनु के वीच में है। इनके द्वार मुख के भीतर, जिह्वा की लगाम के पास है। अन्य दो ग्रंथियाँ जिह्वा-

ग्रीवती ग्रंथि कहाती है। उन्हें अंगरेज़ी में sublingual gland कहते है। वे लंबी, चौरस और मुख की श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे है।

मेरु-दंड के ऊपर कंठ (pharynx) अवस्थित है। यह करोटी के नीचे से श्वास-नली के ऊपर तक फैला है। श्वास-नली को अँगरेज़ी मे trachea कहते हैं। यह पेशी श्लैष्मिक झिल्ली, रक्तवाहिनियों और नाड़ियो से गठित है। कंठ के ऊपर और सामने पीछे की नाक है। मुख के भीतर, पीछे की नाक के नीचे, कोमल-तालु से कुछ ढका हुआ, एक बड़ा गढ़ा है। कंठ के गढ़े और जिह्वा-मूल में स्वर-यंत्र अवस्थित है। कंठ अन्न-प्रनाली में जाकर समाप्त हुआ है।

अन्न-प्रनाली गले की नली है। इसका नल मुख से आमाशय तक विस्तृत है।

आमाशय बाईं ओर वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के साथ संलग्न होकर उसके नीचे अवस्थित है। इसका छोटा सिरा यकृत् के बाएं भाग के नीचे निम्नोदर तक विस्तृत है। यह दो जगह से टेढ़ा है। एक जगह अधिक और दूसरी जगह थोड़ा। इसमें दो द्वार भी हैं, जिनमें एक का गल-नली के साथ और दूसरे का द्वादशांगुलांत्र (duodenum) के साथ संबंध है। पाकाशय देखने में भिश्ती की मशक की तरह टेढ़ा है। उसके तीन आच्छादनी हैं—एक बाह्य आच्छादनी, जिसे रक्तांबुस्राविनी (serous) कहते हैं। दूसरी मध्य की आच्छादनी पैशिक है। तीसरी भीतर की आच्छादनी श्लैष्मिक है। इसमें छोटी-छोटी थैलियाँ हैं, जिनसे

आच्छादनी-रक्षक श्लेष्मा निकलती है। आमाशय में वहुधा छोटी-छोटी गाँठें पाई जाती हैं। उनसे पाचक रस (gastric juice) झरता है।

छोटी-छोटी आँतें प्रायः २५ फ़ीट लंबी हैं। उनके तीन विभाग हैं। यथा द्वादशांगुलांत्र (duodenum), शून्यांत्र (jejunum) और कटिदेशांत्र (ilium)।

द्वादशांगुलांत्र लंबाई और चौड़ाई में वारह अंगुल के लगभग होने के कारण इस नाम से पुकारी जाती है। यह आमाशय के नीचे के सिरे के निकटस्थ छिद्र से शुरू होकर, आँत में घुसने के वाद टेढ़ी होकर, यकृत् के नीचे पीछे की ओर उठी है।

द्वितीय विभाग की आँतें शून्यांत्र कहलाती हैं; क्योंकि मृत्यु के वाद वे शून्य पाई जाती हैं। ये और और आँतों से मोटी और पाटलवर्ण हैं। ये द्वादशांगुलांत्र से शुरू होकर कटिदेशांत्र में समाप्त हुई हैं। कटिदेशांत्र संज्ञक तीसरे विभाग की आँतें छोटी आँतों के $\frac{3}{5}$ भाग में व्याप्त हैं। ये देखने में मैली और विनावट में शून्यांत्र की अपेक्षा पतली हैं। इनमें आरम्भ और अंत का कुछ चिह्न नहीं देख पड़ता। कटिदेशांत्र दक्षिण-गह्वरमें जाकर समाप्त हुई हैं। परंतु इनका मुख स्थूलांत्र (colon) की ओर है।

दक्षिण ओर, वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) के नीचे, यकृत् है। शरीर में यही सवसे वड़ा यंत्र है। इसका वजन चार पौंड के लगभग है। यह खाद्यसंवंधिनी नली से लगा और कुछ वंधनों से वँधा हुआ है। इसका ऊपर का हिस्सा औंधा और नीचे का हिस्सा कुवड़ा है। यह दो काम करता है।

एक तो शैगिकर्त्ता से दोष को दूर करता है, और दूसरे पित्त-क्षरण करता है।

प्लीहा देखने में आयतक्षेत्र (oblong) के माफिक है। यह बाईं ओर वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) के साथ सलग्न है। इसका भी बाहरी अंश औंधा है। इसके भीतरी भाग में एक गढे में दो भाग कर दिए हैं।

क्लोम (pancreas) लालाग्रंथि के अनुरूप है। यह छः इंच के लगभग लंबा और वज़न में तीन-चार औंस है। यह उदर के गड्ढे में आमाशय के पीछे अवस्थित है।

अंत्रपूछ्‌छा कला की चार तहें हैं। ये आमाशय के साथ लगी हुई और अंतड़ियों के आगे अवस्थित हैं। इसकी रक्तवाहिनियों के चारों ओर चर्बी जमा रहती है। यह दो काम करता है। एक तो आँतों को रँगने में सहायता और दूसरे क्षुद्रांत्र को ठंडक से बचाना। धमनी, शिरा, शोषक नाड़ी और आवुसवधी नाडीमंडल से आई हुई नाड़ियाँ इसमें भरी हैं।

पुष्टि के लिये जिन पदार्थों को हम लोग खाते हैं, वे हज़म हो जानेवाले होने चाहिए। कड़ी चीजों को दाँतों से खूब चबाकर महीन कर लेना चाहिए। भोजन को चबाते समय मुख की लाला-ग्रंथि से राल निकल कर आहार के साथ मिलती है। राल खाद्य पदार्थ को भिगोकर नरम बना देती है, जिससे वह सहूलियत के साथ आमाशय में चला जाता है।

जब भोजन अच्छी तरह चबाया जाता है, तब वह आमाशय की आच्छादनी को संकुचित [illegible] बल्कि आमाशय की

ग्रंथियों को क्रिया करने के लिये उत्तेजित भी करता है। उक्त ग्रंथियों से पाचक रस झरता है। इस रस की क्रिया से, और आमाशय की पैशिक संकुचन शक्तिके द्वारा, अनेक प्रकारके खाए हुए पदार्थ नरम हो जाते हैं। जिस परिवर्तित अवस्था में खाए हुए पदार्थ आमाशय में जाते हैं, उस पर पित्त किसी प्रकार का कार्य नहीं करता। आमाशय जब स्वस्थ अवस्था में रहता है, तब किसी प्रकार पित्त नहीं देख पड़ता। सर्वसाधारण की यह भूल है कि वे आमाशय में पित्तके अधिक होने का अनुमान करते हैं। वमन करने के समय साधारणतः जो पित्त देख पड़ता है, उससे यह समझा जाता है कि केवल आमाशय ही नहीं, वल्कि द्वादशांगुलांत्र की क्रिया भी विकृत हो गई है। इस प्रकार वमनकारक ओषधियाँ स्वस्थ आमाशय से पित्त को ले आती हैं। यदि इस विषय में साधारणतः अधिक जानकारी रहे, तो बहुतेरे आमाशय वमनकारक ओषधियों से बच जायँ। लोग पित्त-संचय की भ्रांत धारणा से वमनकारक औषधियों का सेवन करते हैं। वारंवार ऐसा करने से आमाशय का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, और उससे स्थायी रोग उत्पन्न होते हैं।

पाकस्थली के पके अन्नादि (chyme) आमाशय से अंत्रद्वारी (pylorus) होकर द्वादशांगुलांत्र में जाते हैं। वे यकृत्, द्वादशांगुलांत्र और क्लोम को उत्तेजित करते हैं। यकृत् से पित्त, क्लोम से क्लोमिक रस और द्वादशांगुलांत्र से आम झरता है। पित्त और शोणित रस द्वादशांगुलांत्र में पहुंच कर पाकस्थली के जीर्ण अन्नादि का थोडा-सा अंश पाकरस-नामक श्वेत-वर्ण रस बन

जाता है। यह पाकरस और अन्य पदार्थ, पैशिक आच्छादनी के रँगने से, क्षुद्रांत्र के श्लैष्मिक परदे के ऊपर जाते हैं। आँत के भीतर होकर जब पाकरस जाता है, तब उसको लसिका नली (lacteals) खींचकर अंत्र की लसिका ग्रंथियों के भीतर से महालसिकावाहिनी (thoracic duct) में भेज देती है। यहाँ से वह ग्रीवा के निम्नदेशस्थ बृहत् शिरा के भीतर होकर शैरिक रक्त में मिल जाता है। क्षय हुए पदार्थ अधांत्र (cæcum) में चले जाते हैं। क्षयीभूत पदार्थ-समूह उक्त यंत्रों की स्वास्थ्य-क्रिया के स्वाभाविक उत्तेजक हैं। अतएव स्पष्ट रूप से समझा जाता है कि खाने की चीज़ें बहुत गाढ़ी या अत्यंत गुरुपाक न होनी चाहिए। उनमें क्षय होनेवाले पदार्थ का यथेष्ट अंश होना परम आवश्यक है। इसी कारण महीन आटे की रोटी से मोटे आटे की रोटी अधिक व्यवहार के लिये उपयोगी है।

परिपाक- क्रिया के भिन्न-भिन्न परिवर्त्तन होते हैं—जैसे (१) चबाने से आहार में राल का मिलना ; (२) आमाशय का पैशिक संकुचन और पाचक रस के कारण आमाशय में खाद्य का परि-वर्त्तित अवस्था में गमन ; (३) पित्त और क्लोम-रस से खाद्य का पाकस्थली के जीर्ण अन्नादि (chyme) में परिणत होना ; (४) पाकरस (chyle) का लसिका-वाहिनी से बहकर महा-लसिकावाहिनी नाड़ी (thoracic duct) के भीतर होकर जत्रुवस्ति शिरा (subclavianvein) में जाना, और (५) मल निकलना।

शरीर का स्वाभाविक नियम यह है कि हर एक यंत्र की

क्रिया उसकी नियमित उत्तेजना से होती है। अतएव शरीर का अभाव दूर करने के लिये पुष्टिकारक आहार आवश्यक होता है। वह चबाते समय लालाग्रंथियों को उत्तेजित करता है। जो खाद्य अच्छी तरह चबाया गया है, और जिसमें राल अच्छी तरह मिल गई है, वह आमाशय को स्वस्थ रखता है। पाकस्थली के अच्छी तरह पचे हुए अन्नादि द्वादशांगुलांत्र, यकृत् और क्लोम को स्वाभाविक रूप से उत्तेजना पहुँचाते हैं। यदि खाद्य अच्छी तरह चबाया न गया हो, तो उसका परिवर्तन भी दूषित होगा। यदि जीर्णावस्था (chymification) को प्राप्त हो, और पाकरस की उत्पत्ति की प्रक्रिया (chylification) में दोष घटित हो, तो परिपाक के विषय में खाद्य का अतिरिक्त परिवर्तन भी दोष-युक्त होगा।

पाचन-क्रिया के उत्कर्ष और साधारण स्वास्थ्य के लिये नीचे लिखे नियमों पर दृष्टि रखनी चाहिए —

(१) कितना भोजन करना चाहिए ?

(२) खाने की चीज़ कैसी होनी चाहिए ?

(३) किस नियम से खाना उचित है ?

(४) भोजन के समय शरीर की अवस्था कैसी होनी चाहिए ?

पहले नियम के बारे में वक्तव्य यह है कि यह देख कर आहार का परिमाण निश्चित करना चाहिए कि शरीर की उन्नति किस तरह जल्दी-जल्दी होती है, और समय पर कितना मल निकलता है। जो बालक शीघ्र-शीघ्र बढ़ता और अधिक

व्यायाम करता है, उसको हड्डी, पेशी और क्षय की पूर्त्ति के अनुसार भोजन करना चाहिए। जो लोग संतान का प्रतिपालन करते हैं, उन्होंने देखा होगा कि स्वस्थ और बढ़ रहे बालकों की भूक और पाचन-शक्ति कितनी तेज होती है, और वे कितनी जल्दी भोजन की इच्छा प्रकट करते हैं। परंतु जैसे-जैसे शरीर पकने लगता है, वैसे-ही-वैसे आहार की इच्छा भी घटती जाती है। उस समय चमड़े और शरीर के अन्यान्य यंत्रों की क्रिया के कारण जो क्षय होता है, उसकी पूर्त्ति के लिये आहार भी यथेष्ट होना चाहिए। स्वाभाविक नियम के अनुसार क्रिया होने से क्षय अनिवार्य है। अलस बालक-बालिकाओं से परिश्रमी बालक-बालिकाओं के शरीर में क्षय अधिक होने के कारण उन्हें अधिक आहार की आवश्यकता होती है। जो लड़के खुली हवा में खेलते और व्यायाम करते हैं, वे यदि व्यायाम को छोड़ कर परिश्रम-हीन कार्य या व्यवसाय में लग जाय, तो उन्हें आहार भी कम आवश्यक होगा। कसरत या मेहनत कम करने के बाद भी यदि उतना ही आहार किया जायगा, तो शरीर में रोग उत्पन्न कर देगा। इससे माता-पिता को उचित है कि वे इस बारे में आप सावधान रहें, और बालकों को भी सावधान कर दें।

दूसरे नियम के बारे में वक्तव्य यह है कि आमाशय और आँतों की फैलने की शक्ति के अनुसार खाद्य का गुण होना चाहिए। पाव सेर वज़न की वस्तु खाने से आमाशय पूर्ण हो जा सकता है; किंतु वह इतना फैल सकता है कि एक सवासेर

वज़न की वस्तु धारण कर सके। शरीर में जितनी पुष्टई की ज़रूरत होती है, खाद्य में यदि उससे कम पुष्टई रहेगी, तो वह आमाशय और आँतों को आवश्यक उत्तेजना और क्षयीभूत पदार्थों को घुसने पर घर्षण नहीं दे सकेगी। आहार्य वस्तु में यदि क्षयीभूत पदार्थ कम रहे, तो आमाशय में प्रबल व्याधि उत्पन्न हो सकती है। इसलिये पुष्टिकर पदार्थ के साथ अपुष्टिकर क्षयीभूत पदार्थ भी रहना चाहिए। मैदे की अपेक्षा आटे में क्षयीभूत पदार्थ अधिक रहता है। इस कारण वह साधारण व्यवहार के लिये अच्छा है। इसी कारण मेहनती आदमियों से निठल्ले आदमियों का आमाशय दुर्बल रहता है। अतएव उन लोगों को इस विषय की पूरी जानकारी रहनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर मैं यह कहती हूँ कि यदि किसी कुत्ते को केवल चीनी, तेल, घी या और कोई चीज़ एक सप्ताह तक खिलाई जाय, तो उसका कुफल शीघ्र ही देख पड़ेगा। पहले कुत्ता बड़े आग्रह के साथ खाने लगेगा, और उससे उसकी उन्नति भी देख पड़ेगी; किंतु शीघ्र ही उसकी भूक मर जायगी। उसका शरीर दुर्बल हो जायगा; उसे आँखों से सूझ नहीं पड़ेगा; एक सप्ताह में वह मर भी जायगा। किंतु यदि चोकर अथवा लकड़ी का बुरादा मिला कर दिया जाय, तो कुत्ता बराबर स्वस्थ, सबल बना रहेगा। घोड़े का भी यही नियम है। यदि उसको घास न देकर केवल खली-दाना खिलाया जाय, तो वह जल्दी मर जायगा।

कौन-कौन चीज़ हज़म होने में कितना समय लगता है, इसकी सूची नीचे दी जाती है—

चीज़	किस तरह बनी	हज़म होने का समय	
		घंटा	मिनट
भात	उबाला हुआ	१	०
अंडा	कच्चा	१	३०
मछली	उबाली हुई	१	३०
शूकर	,,	१	०
सागूदाना	उबाला हुआ	१	४५
दूध	,,	२	०
गोभी सिर्के में	कच्ची	२	०
अंडा	पकाया हुआ	२	१५
टर्की चिड़िया जंगली	भुनी	२	१८
,, ,, पालतू	,,	२	२५
दूध	कच्चा	२	१५
आलू	भुना	२	३०
मुर्ग़ी का बच्चा बड़ा	तरकारी बना	२	४५
,, ,, मांस	उबाला	२	४५
घी	पकाया	३	३०
रोटी गेहूँ की	ताज़ी	३	३०

अब यह सूची देखकर प्रश्न हो सकता है कि जो खाने की चीज़ जल्द हज़म हो जाय, वही बहुत पुष्टिकर है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि पेशियों और अन्यान्य यंत्रों के लिये जो नियम है, वही आमाशय के लिये भी। आमाशय का व्यायाम ही उसको बलिष्ठ करता है। इसलिये जो चीज़ें बहुत जल्द हज़म हो जाती हैं, वे यदि हमेशा खाई जायें, तो आमाशय दुर्बल हो जायगा। प्रत्येक आहार का गुण, परिमाण आदि इस विषय मे आमाशय की रक्षा के लिये उपयुक्त होना चाहिए।

तीसरे नियम के बारे मे यह कहा जा सकता है कि आहार के लिये एक निर्दिष्ट समय की आवश्यकता होती है। परवर्त्ती आहार में आहार के गुण, आहार करनेवाले की अवस्था, स्वास्थ्य, व्यायाम और अभ्यास के अनुसार समय नियमित होना चाहिए। वृद्ध, आलसी और दुर्बल की अपेक्षा युवा, परिश्रमी और सबल की परिपाक-क्रिया प्रबल और जल्दी होती है। इस कारण दुर्बल की अपेक्षा सबल अधिक बार भोजन कर सकता है। कोई-कोई जवान और सबल आदमी खाई हुई वस्तु को एक घंटे में हज़म कर सकते हैं। मगर उसी चीज़ को दूसरे आदमी चार या उससे भी अधिक घंटों में हज़म कर पावेंगे।

प्रायः साधारण भोजन हज़म करने में दो या चार घंटे का समय लग जाता है। एकबार आहार हज़म करने के बाद आमाशय अपनी शक्ति प्राप्त करने में एक से [illegible] तक का समय

लेता है। इसके बाद फिर वह प्रबल रूप से काम करने के लायक होता है। अतएव लड़कों को यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि यदि आमाशय विश्राम के द्वारा अपनी शक्ति प्राप्त करने के पहले फिर भोजन से भर दिया जायगा, तो पाचक-रस का क्षरण और आमाशय के पैशिक तन्तुओं का संकुचन यथोचित रूप से न होगा। पूर्वभुक्त आहार हज़म होने के पहले यदि भोजन कर लिया जायगा, तो उसका फल अच्छा न होगा; आंशिक जीर्ण खाद्य के साथ पीछे खाया हुआ पदार्थ मिल जायगा। इसलिये हरएक बार भोजन करने के बीच का समय अच्छी तरह हजम होने के लिये अधिक होना चाहिए, और क्लांति दूर करने के लिये आमाशय को अधिक देर तक विश्राम करने का अवसर देना चाहिए। मनुष्य और उसका आमाशय जितना अधिक दुर्बल हो, उतना ही अधिक उसे इस नियम पर ध्यान देना उचित है।

शिशुओं के प्रतिपालन और सयाने लड़के-लड़कियों को भोजन देने में यह सदा स्मरण रखना चाहिए। न पढ़ने-लिखने-वाले बालक की अपेक्षा पढ़ने-लिखनेवाले बालक में हज़म करने की शक्ति कम होती है। बालकों को उपयुक्त नियम से आहार करना सिखाना चाहिए। यह बतलाना चाहिए कि कौर को खूब चबाकर निगलना उचित है। यों खाने से   से क्षरित रस सहज ही भोजन से मिलकर उसको हज़म कर डालेगा। थोड़ा चबाकर खाने से या एक दम लील जाने से हज़म करने की शक्ति घट जाती और शरीर की पुष्टि को भी हानि पहुँचती है।

चबाने में जल्दी न करनी चाहिए; धीरे-धीरे चबाना ही अच्छा है। इस तरह चबाकर लीलने से लाला-ग्रंथियाँ क्रिया करने के लिये उत्तेजित होंगी; क्योंकि भोजन को तर करने के लिये अधिक राल निकलने की आवश्यकता होती है, और वह समयसापेक्ष है। यदि यथेष्ट राल न मिलेगी, तो देर में हज़म होगा। इस कारण जल्दी-जल्दी आहार से रोग की उत्पत्ति होती है।

यह स्पष्ट जान पड़ता है कि भोजन को तर करने के लिये लाला-ग्रंथियाँ रस देती हैं। इसी कारण आहार के समय पानी पीने की या और किसी तरल पदार्थ के सेवन की आवश्यकता नहीं होती। तरल पदार्थ से भोजन को तर करने में आपत्ति यह है कि भोजन राल से तर नहीं होता। इस प्रकार, लाला-ग्रंथियों की यथोचित क्रिया न होने के कारण, मनुष्य रोगी हो जायगा, और उसकी पाकस्थली भी उत्तेजना के अभाव से शिथिल पड जायगी। इसके सिवा अधिक पानी पीने या तरल पदार्थ के सेवन से आमाशय बहुत फूल जाता और पाचक-रस की शक्ति घट जाती है।

आहार के उपरांत थोडा पानी पीने से वह भोजन के पचने मे सहायता कर है। मगर यह बात नहीं है कि वह बहुत ज़रूरी हो।

गरम चीज़ खाने या पीने के अभ्यास से मसूढे में घाव हो जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, मुँह के भीतर घाव हो जाते हैं, और अजीर्ण भी हुआ करता है। गरम खाना या पीना थोडी देर के लिये मुँह और की श्लैष्मिक झिल्ली को उत्तेजित

करता है; किंतु शीघ्र ही उसकी प्रतिक्रिया आकर श्लैष्मिक झिल्ली को दुर्बल कर देती है।

यदि आहार के समय अधिक ठंडा पानी पिया जाय, तो स्वास्थ्य बिगड़ जा सकता है। भोजन ठंडा होने से पाकाशय भी आच्छादनी और चारों ओर के यंत्रों से गरमी खिंचकर ठंडे भोजन या पानी को गरम करेगी। फल यह होगा कि शरीर का बल घट जायगा। खाने या पीने की चीज़ बहुत गरम अथवा बहुत ठंडी न होनी चाहिए। वह गुनगुनी होनी चाहिए; क्योंकि वही पाकयंत्र की स्वाभाविक अवस्था के अनुकूल है।

आहार के समय शरीर की अवस्था पर भी ध्यान देना उचित है। शारीरिक या मानसिक परिश्रम अधिक करने के उपरांत ही भोजन न करना चाहिए; क्योंकि विश्राम के समय अधिक काम करने से अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है। मस्तिष्क और अंग-प्रत्यंग की क्रिया में जैसे यह नियम प्रयोज्य है, वैसे ही भोजन हजम करने के समय आमाशय और आंतों के विषय में भी। फ़ालतू काम करने के समय यंत्र से अधिक रुधिर संचित होने पर वह शरीर के अन्यान्य यंत्रों से खिंच आता है। जो अंग फ़ालतू काम करनेवाले अंग को रुधिर देगा, वह दुर्बल हो जायगा। जब कोई अंग अधिक समय तक अधिक काम करता रहता है, तब अधिक क्रिया को घटाने और शरीर के अन्यान्य अंगों में नियमित क्रिया से रस देने के लिये समय की आवश्यकता होती है।

टहलने और दौड़ने में पेशियाँ प्रबल रूप से काम करती हैं। वे रुधिर को अपनी ओर खींचती हैं। पेशियों के इस प्रकार अतिरिक्त काम करने के समय आमाशय अलस और भोजन हज़म करने की शक्ति से रहित हो जाता है। इसलिये आहार के उपरांत ही अधिक परिश्रम करना उचित नहीं है। खाने से घंटा-भर पहले या पीछे गीत या वक्तृता से स्वरयंत्र को क्रियाशील अथवा लगातार मस्तिष्क-संचालन करना अनुचित है। वार्तालाप और आनंद की हँसी से भोजन पचने में सहायता होती है। इस विषय में निम्नलिखित रूप से परीक्षा की जा सकती है। दो कुत्तों को एक तरह का भोजन खिलाकर एक को शिकार के लिये भेज दो, और दूसरे को चुपचाप आराम करने दो। एक घंटे बाद दोनों कुत्तों को मार डालो। देखोगे, जो कुत्ता आराम करता था, उसकी पाक-स्थली प्रायः खाली होगई है; और दूसरे की पाक-स्थली में प्रायः भोजन जैसे-का-तैसा है। एक की दैहिक क्रिया आमाशय में और दूसरे की शक्ति दौड़ने के कारण पैरों मे सीमाबद्ध थी। अतएव आहार के बाद यदि मस्तिष्क और पेशियों का संचालन किया जाय, तो आमाशय की शक्ति अन्यत्र खिंच जायगी।

सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि परिपाक-शक्ति मानसिक क्रिया के अधीन है। यदि कोई व्यक्ति प्रबल क्षुधा के साथ खाने बैठे, और उसी समय उसके किसी साथी के मरने की या कोई विषय-संपत्ति नष्ट होने की खबर पहुचे, तो उसी समय उसकी

क्षुधा न-जाने कहाँ चली जायगी ; क्योंकि मस्तिष्क उस शक्ति को खींच लेगा।

खाने के उपरान्त कम-से-कम तीन घंटे बाद सोना उचित है। यदि कोई भोजन के बाद थोड़ी देर में सो जाय, तो उसे अच्छी तरह नींद नहीं आवेगी, अप्रिय स्वप्न देख पड़ेंगे, अथवा शूल की वेदना घेर लेगी। ऐसी अवस्था में मस्तिष्क शक्ति-हीन रहता है, और आमाशय में जिस वात-शक्ति की आवश्यकता होती है, वह स्थगित रहती है। हजम करने के लिये वात-शक्ति यथेष्ट न होने पर पाकाशय का खाद्य अपरिवर्तित अवस्था में रहता है, और इस कारण उसमें ज्वाला उत्पन्न होती है।

लोग कहते हैं, इच्छा होने पर आहार करने से किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं है। यह भ्रम है। यदि ऐसा करें, तो इस भ्रम का अनुभव भी हो सकता है। यदि कोई आदमी अधिक देर तक भूका रहे, तो उसका आमाशय और दैहिक शक्ति दुर्बल हो जाती है। जलमग्न जहाज अथवा रोग-विमुक्त मनुष्य इसके उत्तम उदाहरण हैं। इसका कारण यही है कि अधिक देर तक भूके रहने से आमाशय दुर्बल हो जाता है, और तब वह जीर्ण करने की शक्ति कम होने के कारण अधिक समय में भोजन को पचा सकता है। पेशियाँ दुर्बल होने पर टहलना भी वैसा ही हानिकारक है।

चर्म की दशा भी आमाशय के ऊपर विशेष प्रभाव डालती है। नंगे बदन होने अथवा ठंडक के कारण यदि पसीना बंद हो जाय, तो आमाशय और उसके सहकारी यंत्रों की क्रिया-शक्ति

घट जायगी। इसलिये अपरिच्छिन्न (नंगे) अथवा ठंडक में बैठनेवाले व्यक्तियों के आमाशय और यकृत् में पीडा होते अधिकतर देखा जाता है।

पंजर और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) को वाधा प्राप्त होने से हज़म करने की शक्ति घट जाती है। ऐसा होने से फुसफुस के रुधिर की जारण-क्रिया को ही केवल वाधा नहीं पहुंचती, वल्कि वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के उन्नयन और अवनयन, प्रतिहत होकर, उदर की क्रिया में भी रुकावट डालते है। हरएक निःश्वास में पंजर ऊँचा होना और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी का केंद्रस्थान एक से दो इंच तक झुकता है। इस अवनयन के साथ-साथ उदर की सामने की पेशियाँ शिथिल हो जाती है। हर एक प्रश्वास में शिथिल उदर की पेशियाँ संकुचित होती है, पंजर झुकता है, वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी शिथिल होती हैं, और केंद्रस्थान ऊंचा होता है। वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी की गति ही आमाशय, यकृत् और उदर-यंत्रादि के ऊंचे होने और झुकने को नियमित करती है। अतएव जो लोग तंग पोशाक से पंजर और उदर-पेशियों की अवाध गति को वाधा पहुंचाते हैं, वे यह नहीं जानते कि इससे आमाशय की शक्ति घट जाती है। यदि वे इस वात को जानें, तो कभी वैसा न करें। वाधा को प्राप्त पंजर और उदर-पेशियाँ स्वास्थ्य के लिये आवश्यक, पूर्ण और गंभीर श्वास नहीं लेने देती इसका फल यह होता है कि दैहिक क्रिया दुर्वल होने से स्वास्थ्य-भंग हो जाता है।

उठने और बैठने का ढंग भी आमाशय के ऊपर अपना असर डालता है। यदि कोई सामने झुका रहता है, तो वस्ति-गह्वर की हड्डियाँ (pelvic bones) और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशियाँ निकट आ जाती हैं। इससे वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के झुकने में बाधा पड़ती है। आमाशय, यकृत, क्लोम और उदर के उन्नयन-यंत्रादि में दबाव पड़ने से उनमें रोग पैदा होना अवश्यंभावी है। स्वस्थ और पूर्ण विकसित पेशियां मेरुदण्ड को सीधा रखती हैं। इस कारण आमाशय का स्वास्थ्य ठीक रहता है। अतएव बालकों को टहलने और पढ़ने के समय सीधे रहने की आदत डलवानी चाहिए। सीधे बैठने से पंजर और उदरपेशियों की क्रिया में बाधा नहीं पहुंचती, और इसी से अजीर्ण-रोग भी भाग जाता है।

दूषित वायु खाने की इच्छा को थका देता और हाजमे को दुर्बल बना देने की बड़ी शक्ति रखता है। जो लोग तंग और वायुहीन स्थान में सोते हैं, उन्हें सवेरे बिलकुल भूक नहीं लगती, और मुंह और गला सूखा करता है।

सरदियों की अपेक्षा गरमियों में चमड़े की नलियाँ अधिक क्रियाशील रहती हैं। इस कारण आमाशय दुर्बल होजाता और आँतों में एक प्रकार की जलन होती है। इससे समझा जा सकता है कि इस समय शीतकाल की अपेक्षा थोड़े और अनुत्तेजक आहार की ज़रूरत होती है। इस नियम पर दृष्टि रखने से, स्नान करने से, और काफ़ी पोशाक पहनने से आँतों का कोई रोग नहीं होने पावेगा।

षष्ठ अध्याय

श्वास-यंत्र

श्वास खींचने और छोड़ने ही को श्वास-क्रिया कहते हैं। श्वास-यन्त्रों के नाम हैं स्वरयंत्र (larynx), वायु-नली (या टेंटुआ) और फुसफुस। वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी, पंजर और उदर की पेशियाँ श्वास-क्रिया के अधीन हैं।

वक्षःकोटर (thorax) में फुसफुस है। फुसफुस का आकार केले के फूल के माफ़िक है। यह हृदय धारण किए हुए, वक्षःकोटर के दोनों ओर अवस्थित और बीच में झिल्लीमय परदे के द्वारा पृथक् किया हुआ है। फुसफुस देखने में गुलाबी धूसर वर्ण है, पर वास्तव में विविध वर्णों से रंजित और कृष्ण-वर्णाभ भी है। प्रत्येक फुसफुस सूक्ष्म भागों (lobe) में विभक्त है। दाहना फुसफुस बाएं से बड़ा है।

हरएक फुसफुसआवरक (pleural)-नामक रक्तांबुस्राविनी झिल्ली (serous membrane) से घिरा है। दोनों फुसफुस वायु-नली की शाखा से बने हैं।

हर एक फुसफुस अपनी जड़ से अपनी जगह में संलग्न है। इसमें से हरएक की जड़ फुसफुस की धमनी, फुसफुस की शिरा, वायुनली और नाड़ीजाल से गठित है।

स्वर यंत्र ग्रीवा के सामने की वायुनली और जिह्वा के बीच में अवस्थित है। वायुनली स्वरयंत्र से पृष्ठदेशीय कशेरु के ३ अंश तक फैली है। वहाँ से उसकी दो शाखाएँ हुई हैं, जो भुजाओं के द्वारा अपने-अपने फुसफुस में चली गई हैं। फुसफुस में पहुँच-कर हरएक शाखा की दो शाखाएँ हुई हैं। उनमें से हरएक शाखा फिर विभक्त होकर छोटी-छोटी थैलियों के रूप में परि-णत हुई है। थैलियों की परिधि एक इंच के २० से २०० अंश तक है। वायु-कोष्ठ संख्या में इतने अधिक हैं कि उनका झिल्ली का परिसर मनुष्य के शरीर-भर में २०,००० वर्ग-इंच से भी अधिक है। फुसफुस अधिकतर छोटी-छोटी वायुनलियों और कोष्ठों से गठित हैं। पर इनके एकदम फूलने से वायु भर जाता है, और हर हाल में इनका गुरुत्व जल से कम होने के कारण ये युक्तयंत्रों की रोधनी कहलाती है। वायुनली, श्वास-प्रणालियाँ (Bronchi) और वायुकोष्ठ श्लैष्मिक झिल्ली से ढके हुए हैं। शरीर के और-और स्थानों की तरह फुसफुस में भी धमनी, शिरा, शोषक नाड़ी और सूत्र देखने में आते हैं।

फुसफुस के हरएक निःश्वास में श्वास-संबंधिनी पेशियाँ पंजरों को ऊँचा करती हैं, और उसी समय वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के संकुचन के कारण पंजर झुक जाते और वक्षःस्थल की परिधि बढ़ जाती है। पंजर के उन्नयन और वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के अवनयन के साथ-साथ उदर की पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, और उदर सामने निकल आता है। पंजर और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी की क्रिया से वक्षःस्थल का गह्वर बढ़

जाता और फुसफुस ख़ाली हो जाता है। वायुनली और वायु-कोष्ठ में जो हवा जाती है, उसकी प्रबलता से साम्य रक्षित होता है।

प्रश्वास में उदर-पेशी के संकुचन के कारण पंजर अवनत होता है, वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी भी शिथिल हो जाती है, और केंद्र ऊंचा हो उठता है। इसके द्वारा वक्षःकोटर संकुचित होता और वायुकोष्ठ से वायु निकलने के कारण फुसफुस आयतन में घट जाता है।

दूषित या शैरिक रक्त फुसफुस की धमनी के भीतर होकर हृदय की दाहनी ओर से फुसफुस में जाता है। यह धमनी, जहाँ तक रक्तवाहिनियाँ केश के समान सूक्ष्म नहीं हो गई है, वहाँ तक, अनेक भागों में विभक्त है। केश-सी सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को केशिका नाड़ी (Capillary) कहते हैं। ये छोटी-छोटी नाड़ियाँ वायुकोष्ठ के पतले परदे के ऊपर आकर मिल गई है। यहाँ हृदय से ताडित होकर छोटी-छोटी नलियों में जो रक्त जाता है, वह वायुकोष्ठ के पतले परदे और केशिका नाड़ी की आच्छादनी से पृथक् हो जाता है। उस समय कोष्ठस्थ वायु केशिका नाडी के ऊपर क्रिया करके काले शैरिक रक्त को लाल रंग का बनाता है। उसके उपरांत वही रक्त फुसफुस और उसकी शिरा के भीतर होकर हृदय की बाईं ओर लौट जाता है। जिन नलियों के द्वारा हृदय से रक्त निकलता है, उन्हें धमनी, और जिन नलियों के द्वारा हृदय के भीतर रक्त आता है, उन्हें

शिरा कहते हैं। पूर्व समय में लोग धमनियों को वायुनली समझते थे।

श्वास में खिंचा हुआ वायु शिरा के रुधिर को धमनी के रुधिर के रूप में परिणत करने की शक्ति रखता है। इस कारण उसका रासायनिक विश्लेषण भी रहस्य-पूर्ण है। परीक्षा से देखा गया है कि उसमे दो गैस है—ओपजन (oxygen) और नत्रजन (nitrogen)। यह वायुमंडल में हवा के साथ मिला हुआ रहता है। उसमें $\frac{1}{5}$ भाग ओपजन, $\frac{4}{5}$ भाग यवक्षार-नत्रजन और थोड़ा अंगाराम्ल (Carbonic acid) रहता है।

हम लोगों के शरीर से जो अंगाराम्ल निकलता है, उसके गठन के विषय में दो उपपत्तियाँ हैं। एक यह कि ओपजन हम लोगों की श्वास से खिंची हुई हवा के साथ मिलकर फुसफुस के भीतर अंगार को अंगाराम्ल के रूप में बदल देता है। दूसरी यह कि फुसफुस के भीतर ओपजन से अलग होकर नत्रजन रुधिर के साथ मिल जाता है, और संचरण-काल में अंगार के साथ उस का सम्मिश्रण होता है, जिससे शरीर से फुसफुस और चमड़े के भीतर से निकले हुए अंगाराम्ल की सृष्टि होती है।

निम्नलिखित परीक्षा से देखा गया है कि झिल्ली के भीतर सुरासार से पानी बड़ी सहूलियत से चला जाता है। एक बोतल में सुरासार और पानी मिला कर खोल कर रख दो। देखोगे, दोनों का परस्पर हवा के साथ अधिक संबंध है। हवा के साथ सुरासार का अधिक संबंध है, और बाधा न होने पर वह जल से

जल्दी हवा के साथ मिल जाता है। किंतु यदि बोतल के मुँह में एक टुकड़ा　　बाँध कर कुछ दिन तक रख दिया जाय, तो देख पड़ेगा कि जल ने मसाने के भीतर होकर सुरासार को छोड़ दिया है। इस परीक्षा से यहाँ पर फुसफुस के रक्त के परिवर्त्तन को समझाने की चेष्टा की जायगी।

उल्लिखित बोतल के मुँह में मसाना जो चीज़ है, वही यांत्रिक व्यवस्था में वायुकोष्ठों (air vesiclas) के परदे और रक्तवहा नाड़ी की आच्छादनी भा है। रुधिर के साथ नत्रजन की अपेक्षा ओषजन का अधिक संबंध है। इसलिये नत्रजन की अपेक्षा ओषजन बहुत ही सहज में रक्त और वायुमध्यस्थित झिल्ली में प्रवेश करता है। रुधिर से हवा के साथ अंगाराम्ल का अधिक संबंध है। यह रुधिर से बहुत ही सहूलियत के साथ रक्तवहा नाड़ी और वायुकोष्ठ के परदे के भीतर होकर जाता है।

शैरिक रुधिर में अंगाराम्ल के कारण कृष्ण वर्ण की झलक पाई जाती है। जब यह दूषित रुधिर वायुनली के ऊपर होकर जाता है, तब वायुकोष्ठ का ओषजन उसके परदे और छोटी-छोटी रक्तवहा नाड़ियों की आच्छादनी में घुस कर शैरिक रुधिर के साथ मिल जाता है।

उस समय अंगाराम्ल शैरिक रुधिर को त्याग कर रक्तवहा नाड़ी की आच्छादनी और वायुकोष्ठ के अंदर जाकर हवा के साथ मिल जाता है। यह परिवर्त्तन ही रुधिर के वर्ण और स्वभाव को परिवर्तित करता है।

शरीर से जितना अंगाराम्ल निकलता है, उतनी ही फुसफुस के लिये विशुद्ध वायु की ज़रूरत होती है। यह व्यायाम और आहार के परिमाण से नियमित होता है। आलसी की अपेक्षा परिश्रमी को और मिताहारी की अपेक्षा पेटू को हवा की अधिक आवश्यकता होती है।

फुसफुस के आयतन, पंजरों की गति और वायु की विशुद्धता के ऊपर शरीर से निकले हुए अंगाराम्ल का परिमाण निर्भर है।

जब श्वास-यंत्र के आयतन के कारण श्वास से खिंची हुई हवा के परिमाण का तारतम्य होता है, तब फुसफुस का आयतन बड़ा होना चाहिए। यह बात निम्नलिखित परीक्षा से समझ में आ सकती है।

थोड़े तुरासार के साथ थोड़ा पानी मिलाकर एक वर्ग-फ़ुट के मुँहवाले पात्र में रख कर यदि उसका मुंह झिल्ली से बाँध दिया जाय, तो २४ घंटे में पानी उड़ जायगा। यदि उसका मुँह केवल १ वर्ग-इंच का हो, तो २४ घंटे में केवल ½ भाग जल उड़ जायगा। यदि उसका मुह दो वर्ग-फ़ुट का हो, तो पानी १२ घंटे में उड़ जायगा। इसी नियम का फुसफुस के बारे में भी प्रयोग करो। सोचो, शरीर से २४ घंटे में २०० घन-फ़ीट अंगाराम्ल निकालना पड़ेगा। यह गैस समय पर २००० वर्ग-फ़ीट रस-कोषमय झिल्ली के भीतर होकर जायगा। यदि फुसफुस आकृति में कम हो, और १००० वर्ग फ़ीट रसकोषमय झिल्ली के अंदर होकर जाता हो, तो गैस शरीर से पूर्णतया नहीं

निकलेगा। इस दशा में रक्त शुद्ध नही होगा। फिर समझो कि २००० वर्ग-फ़ीट झिल्ली २४ घंटे में २०० फ़ीट ओषजन भेजती है। यदि इसका आकार १½ भाग घट जाय, तो अम्लजन का युक्त परिमाण रुधिर में नहीं प्रवेश करेगा। इस उदाहरण से स्पष्ट जाना जाता है कि पूर्ण विकसित हृदय और वृहदाकार फुसफुस की विशेष आवश्यकता है; क्योंकि फुसफुस का आकार बड़ा होने से रुधिर मे अधिक अम्लजन घूस सकेगा, और वह शरीर से अम्लजन को पूर्ण रूप से दूर कर सकेगा।

बालक हो या युवा, तंग पोशाक पहनने से छाती का घेरा घट जायगा। बचपन में ख़ास कर छाती के ऊपर सदा तंग पोशाक पहनने से नमनीय पंजर और उपास्थियाँ (Cartilage) सिकुड जाती हैं। इस कारण तंग पोशाक कभी न पहननी चाहिए।

यह याद रखना चाहिए कि छाती के नीचे की ओर का अंग अधिक चौड़ा होता है, और फुसफुस के इसी ओर अधिक वायुकोष्ठ है। इस कारण फुसफुस के नीचे की ओर ⅓ अंश से अधिक परिमाण में अंगाराम्ल रुधिर से निकल जाता और अधिक ओषजन रुधिर में संचित होता है। इसलिये छाती के नीचे के पंजर को संकुचित करने से जितनी स्वास्थ्य-हानि होती है, उतनी छाती के ऊपरी भाग के संकुचन से नहीं।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि बुद्धि के दोष से यदि छाती का घेरा घटा दिया जाय, अथवा यदि यह दोष पुरुष-परंपरा से चला आ रहा हो, तो उसका क्या उपाय है? इसके उत्तर में

यह कहा जा सकता है कि खुली हवा में फुसफुस का उपयुक्त व्यायाम-ऊँचे स्वर से पढ़ना, गाना, सीधे होकर बैठना और हर-एक साँस में फुसफुस को फुलाना—छाती के घेरे को बढ़ा सकता है। इन क्रियाओं में से किसी एक को लगातार अधिक दिन तक करने से छाती का चौड़ा होना अनिवार्य है। परंतु यदि असमय में अधिक फुसफुस का व्यायाम किया जायगा, तो उससे आशानुरूप फल नहीं मिलेगा।

बड़े आकार के फुसफुस में, हरएक बाधाहीन निःश्वास में, २० से ४० घन-इंच तक वायु प्रवेश करता है। परंतु यदि पंजर और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी की गति रुक जाय, तो रक्त शुद्ध न होगा। यदि पंजर का उन्नयन और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी का अवनयन इस प्रकार रुक जाय कि जहाँ २० घन-इंच वायु की आवश्यकता है, वहाँ १० घन-इंच वायु प्रवेश करे, तो फल यह होगा कि केवल आधा अंगाराम्ल शरीर से निकलेगा, और रुधिर को आवश्यक ओपजन का आधा भाग ही मिलेगा। तब रुधिर का अनुपयुक्त जारण होगा, और दूषित पदार्थ भी आंशिक रूप से संशोधित होगा। वह दूषित रक्त हृदय की बाईं ओर लौट आवेगा, और शारीरिक नियम के लंघन से सारे शरीर को हानि उठानी पड़ेगी।

मस्तिष्क की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ श्वास-क्रिया के ऊपर प्रभाव डालती हैं। भावना, दुःख अथवा चिंता में पंजर को ऊँचा करनेवाली वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी और अन्यान्य पेशियों की संकुचन-शक्ति इतनी घट जाती है कि फुसफुस पूर्ण

रूप से नहीं फैलता, और प्रश्वास की मात्रा भी घट जाती है। इन सब कारणों के प्रभाव से रक्त आंशिक शुद्ध होता है, और दैहिक शक्ति दुर्बल हो जाती है। इससे प्रायः शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में क्षय-रोग के बीज संचित होते हैं। फल यह होता है कि ऐसे लोगों को गंडमाला या क्षय-रोग के विकराल ग्रास में पड़ना पड़ता है। ऐसी घटना मनुष्यों के अभाग्य से ही संघटित होती है। हर साल सैकड़ों आदमी इसी तरह अकाल मृत्यु के शिकार बन जाते हैं।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री और लड़कों की श्वासक्रिया अधिक होती है। रोग में—ख़ासकर फुसफुस के रोग में—हृदय की क्रिया से साँस लेना अधिक होता है। विश्राम की अवस्था में, हर एक मिनट में, स्वस्थ आदमी १४-१८ बार साँस लेता है। साधारणतः हृदय का स्पंदन हर निःश्वास में ४ बार होता है।

यदि कोई आदमी हरएक मिनट में १८ बार साँस छोड़े और हरएक बार २० घन-इंच वायु ग्रहण करे, तो अभाव पूर्ण करने के लिये २४ घंटे में ५१,१८,४०० घन-इंच वायु की आवश्यकता होती है।

निःश्वास की वायु में $\frac{1}{5}$ भाग ओषजन रहना चाहिए। हरएक निःश्वास में ओषजन का थोड़ा-सा अंश रक्तमय झिल्ली में घुसकर ख़ून के साथ मिल जाता है। इस समय रुधिर भी कुछ अंगाराम्ल छोड़ देता है। यह अंगाराम्ल से मिला हुआ वायु दूसरी बार साँस लेने के लायक़ नहीं रहता।

यह बात इस साधारण उदाहरण से समझा दी जा सकती है। चूने के पानी से भरे हुए एक पात्र में श्वास-प्रश्वास लेते रहो। थोड़ी देर में देखोगे, पानी के ऊपर एक सफ़ेद रंग की तह जम गई है। इसको कारबोनेट ऑफ़् लाइम कहते हैं।

यह अच्छी तरह मालूम है कि जहाँ अंगाराम्ल रहता है, वहाँ बत्ती नहीं जल सकती। प्रश्वास-वायु में अंगाराम्ल के होने का दूसरा प्रमाण इस परीक्षा से जाना जा सकता है। ऐसा एक ग्लास लो, जिसमें stop tap लगा हो। उसे पानी में डुबा दो। तब तक उसे डूबा रहने दो, जब तक वह भरकर हवा से ख़ाली न हो जाय। उसके बाद उसको क्रमशः उठाकर श्वास-प्रश्वास लेते रहो। परंतु यह देखते रहना कि बाहर की हवा यथासंभव न जाने पावे। फिर उस वायु को श्वास द्वारा ग्रहण करो, और पानी में पात्र को डुबा दो। इसी क्रिया को बार-बार करो, और पात्र को श्वास के वायु से कई बार भरो। फिर stop tap को घुमा दो, और पात्र के नीचे एक प्लेट रख कर उसके ऊपर काग़ज़ का एक ताव रख दो। पात्र का खुला हुआ मुँह पानी के नीचे रहना चाहिए। प्लेट को जल से पूर्ण रखने और stop tap को घुमा देने से बाहर की हवा पात्र के भीतर न घुस सकेगी। बत्ती जला कर पात्र को उठा कर एकदम उलट दो। पर यह ध्यान रखना कि पात्र का मुँह काग़ज़ से ढका रहे। फिर काग़ज़ को उठाकर जलती हुई बत्ती भीतर कर दो। बत्ती की लौ, ओषजन के न रहने और

अंगाराम्ल के रहने से, उसी समय बुझ जायगी। इससे स्पष्ट जाना जा सकता है कि शरीर की शक्ति की रक्षा करने में श्वास से हम लोग जो हवा लेते हैं, वह विशुद्ध होनी चाहिए। जो औरतें खास कर गरमी में मुंह को जाल से ढके रहती हैं, उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। उनका मुख मलिन और रुग्ण देख पड़ता है। उनके सिर में पीड़ा भी हुआ करती है। वह जाल विशुद्ध वायु के सेवन में बाधा डालता है, और उसके कारण श्वासा में बार-बार अंगाराम्ल भीतर जाता है।

लड़कों को यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि स्वास्थ्य का नियम तोड़ने से ईश्वरीय नियम नष्ट होता है, और शीघ्र ही रोग के रूप में उसका दंड भी भोगना पड़ता है।

जिस घर में अच्छी तरह हवा नहीं आती-जाती, वह यदि आदमियों से भर जाय, तो उसका ओषजन शोषित और अंगाराम्ल संचित होगा। ऐसी अवस्था में घर का प्रकाश फीका पड़ जायगा। जितना ओषजन वायु घट जायगा, उतना ही प्रकाश भी धीमा होकर बुझने के क़रीब हो जायगा। जिस घर की रोशनी साफ़ साफ़ नहीं होती—तेज़ नहीं होती—वह घर साँस लेने के लायक़ नहीं होता। इसी कारण कुएँ या तहख़ाने में उतरते समय पहले एक दीपक लटकाना चाहिए। अगर बत्ती बुझ जाय, तो वहाँ अंगाराम्ल स चाहिए। उस दूषित गैस को निकाले बिना उसमें उतरने से मृत्यु अवश्यंभावी हो जाती है। हर २४ घंटे में हम लोगों के फुसफुस और चमड़े से भी दो पौंड से अधिक दूषित पदार्थ निकलता है। यह दूषित वायु घर में

व्याप्त हो जाता है। वह दूर न होने से फुसफुस साँस लेने के लायक़ नहीं रहता।

ओपजन के अपसारण से, या अंगाराम्ल की अधिकता से, अथवा फुसफुस और चमड़े से अंगाराम्ल के निकलने से, चाहे जिस कारण से हो, वायु दूपित होने पर रक्त दूपित होकर शरीर में तरह-तरह की व्याधियाँ उत्पन्न कर सकता है। इस कारण घर, स्कूल, कारखाने आदि में विशुद्ध हवा के आने और दूपित वायु के निकलने का प्रबंध रहना चाहिए। और कुछ दूपित होने पर उसका उपाय किया जा सकता है, किंतु भोजन या पोशाक के दूपित होने पर किसी चीज़ से उसका प्रतिविधान नहीं हो सकता।

स्कूल के मकान में यदि अच्छी तरह हवा के आने-जाने का प्रबंध नहीं रहता, तो विद्यार्थियों के मस्तिष्क में दूपित रक्त भर जाता है, और मस्तिष्क ठीक-ठीक काम नहीं करता। फल यह होता है कि विद्यार्थी पढ़ने में असमर्थ हो जाते हैं; उनकी सोचने की शक्ति लुप्त हो जाती है; और सिर की पीड़ा भी उन लोगों को घेर लेती है। अंगाराम्ल की अधिकता से ही ये बातें होती हैं।

ख़ास कर सोने का स्थान ऐसा हवादार होना चाहिए कि सवेरे की हवा संध्या-काल में विश्राम-काल की हवा की तरह विशुद्ध हो। इससे सवेरे सिर की पीड़ा फिर न होगी। साथ ही कमज़ोर आदमी को भी सवेरे भूक लगेगी। हरएक रहने का स्थान ऐसा बनना चाहिए कि उसमें बिना किसी रुकावट के विशुद्ध वायु आ सके। दूपित वायु से शरीर कम-

ज़ोर होता है। अमिताहार से जितनी हानि नहीं होती, उससे अधिक हानि घर के दूषित वायु से होती है। जो लोग दिन-रात दरवाज़े बंद रखते हैं, उनका सदा रोगी बने रहना विचित्र ही क्या है ?

शरीर का रक्त दूषित होने से क्या कुफल होता है, यह अब आगे बतलाया जाता है। जो कारण पहले बतलाए गए हैं, वे सब मिलकर, या उनमें से कोई एक ही रुधिर को दूषित कर है। स्वस्थ अवस्था का नियम यह है कि हड्डी के लिये साफ़ ख़ून की ज़रूरत होती है। यदि उसको साफ़ ख़ून न मिला, तो वह कोमल, भंगुर और रोगसंकुल हो जाती है। स्वास्थ्य की दूसरी दशा यह है कि चार सौ पेशियों के लिये साफ़ ख़ून की ज़रूरत होती है। वे हड्डी के साथ लगी रहती और हड्डी के ऊपर हरकत करती हैं। पेशी के स्वास्थ्य और आकुंचन-शक्ति पर मनुष्य की गति-शक्ति और परिश्रम करने की शक्ति-निर्भर है। उसकी गति-शक्ति के यंत्रों में यदि दूषित रक्त भर जाय, तो वे कमज़ोर हो जायेंगे। चलने की शक्ति और वैसा तेज़ नही रहेगा। उसकी हरएक पेशी अपना काम करने में असमर्थ हो जायगी। आमाशय और अन्यान्य यंत्रों को भी, जिनके ऊपर -शक्ति निर्भर है, दूषित रक्त मिलेगा। इससे आमाशय कमज़ोर, भूक कम और आँतें विश्रृंखल हो जायँगी। अजीर्ण-रोग उत्पन्न होगा। वह दूषित रक्त फुसफुस की परिपोषक धमनी में भी । इन कोमल यंत्रों के स्वास्थ्य और शक्ति के लिये विशुद्ध रक्त की आवश्यकता होती है।

रक्त शुद्ध न होने से ये यंत्र शक्ति-हीन हो जाते हैं। ये फिर दूषित रक्त को शुद्ध नहीं कर सकते। वह काला दूषित रक्त चमड़े में जाकर मनुष्य के स्वास्थ्य और सौंदर्य को नष्ट कर देता है। फल यह होता है कि चमड़े के ऊपर दाने निकल आते हैं। इस दशा को दूर करने लिये चाहे हज़ारों दवाएं कर डालो, मगर जब तक असली कारण न दूर होगा, तब तक किसी सुफल की संभावना नहीं है।

पहले कहा जा चुका है कि विशुद्ध वायु का मिलना और वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी की क्रिया में रुकावट न पड़ना दुर्बल व्यक्तियों के लिये विशेष आवश्यक है। विशुद्ध वायु न मिलने से गंडमाला-रोग बड़ी जल्दी हो जाता है। ज्वर के हाथ से बचने के लिये विशुद्ध वायु ही एक प्रकार की महौषधि है। ज्वर के समय बहुतेरे आदमी ठंडक लगने के डर से दरवाज़े और खिड़कियाँ बंद रखते हैं। पर वे यह नहीं जानते कि ऐसा करने से घर में दूषित वायु भर जायगा। रक्त को शुद्ध रखने के लिये विशुद्ध वायु की बड़ी ज़रूरत है। रक्त शुद्ध रहने से शरीर की शक्ति जल्दी नहीं घटती, और इससे रोग भी रोगी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

सप्तम अध्याय

आँख
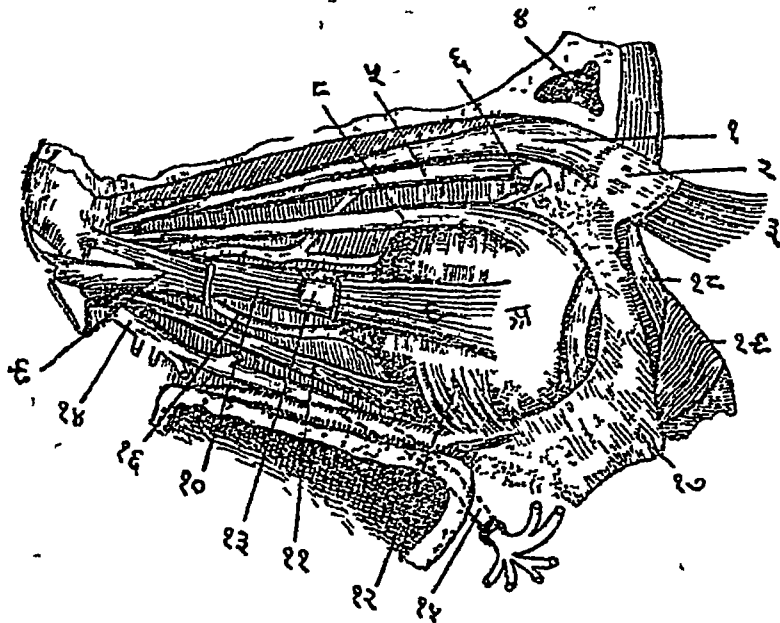
यहाँ जो आँख का चित्र दिया जाता है, उससे सब लोग जान सकते हैं कि आँख एक प्रकार का गोलाकार पदार्थ है। यह तीन तहों के भीतर है। वे तहें प्याज के छिलके की तरह हैं। बाहर की तह कठिन और तंतुमय है। यह घनत्वक् (sclerotic) के नाम से प्रसिद्ध है। बीच की तह रक्तवहा नाड़ी से परिपूर्ण है। इसको कृष्णावरक (choroid) कहते हैं। भीतर की तह आलोकानुभावक है। इसको चित्रपत्र (retina) कहते

हैं। चक्षुगोलक एक कक्षा में अवस्थित और पीछे लगी हुई एक ख़ास पेशी से चलता फिरता है। करोटी के पीछे घिरे हुए एक स्थान के भीतर होकर दर्शन-नाडी (optic nerve) अक्षिगोलक से मस्तिष्क तक चली गई है। सामने अक्षिपुट-नामक दो स्वाधीनगतिशील परदे हैं। कक्षा के बाहर अश्रुग्रंथियाँ (lachrymal gland) हैं। अश्रुग्रंथि सदा रस निकाल कर आँख के अगले हिस्से को भिगो देती है। अधिक आँसू निकलने पर ये दोनों गाँठें छोटे-छोटे दो गढ़ों में चली जाती हैं। आँख के सामने एक स्वच्छ खिड़की है। इसको कनीनिका (cornea) कहते हैं। इस आलोकत्वक् के भीतर होकर प्रकाश भीतर जाता है। प्रकाश की किरणें आँख की कोमल गठन के लिये तीव्र न हो सकें, इसलिये रंगीन व्यूहतंतु-मंडल, जिसको उपतारा (Iris) कहते हैं, कनीनिका के ठीक नीचे है। वह मंडल दर्शन के लिये प्रकाश की न्यूनाधिकता के अनुसार बड़ा या छोटा हो सकता है। इस मंडल के जिस गढ़े से प्रकाश प्रवेश करता है, वह चक्षुतारा (Pupil) कहलाता है। यह चक्षुतारा यथेष्ट किरणों के भीतर आने के लिये सदा आकुंचित और प्रसारित होता है। चक्षुतारा के पीछे ताल (lens) है। यह देखने में बिल्लौर-सा साफ़ है, और इसमें छोटी-छोटी गठन की परिवर्त्तनशील पेशियाँ लगी हुई हैं। आँख देखने में ठीक फ़ोटोग्राफ़ी (Photography) के यंत्र की तरह है। जिस तरह कॅमरे में वस्तु का प्रतिबिंब पड़ने से चित्र खिंच जाता है, वैसे ही वही बात आँख में भी होती है। चित्रपत्र में

वस्तु का प्रतिबिंब आकर . है। चित्रपत्र का दर्शन-नाड़ी के साथ संबंध है। इसलिये जो चित्र- उसके ऊपर . है, वह ताल के भीतर होकर मस्तिष्क में पहुंचता है। वहीं दृष्टि का अनुभव होता है।

अष्टम अध्याय

कान

हम लोग जिनको कान कहते हैं, उन्हें वास्तव में वाहरी कान कहना चाहिए। सुनने का यंत्र तो करोटी की दीवार में अवस्थित है। जो नली वाह्य कर्ण में उद्घाटित हुई है, उसमें यदि हम तीव्र प्रकाश से देखें, तो ऊपरी भाग से   हुआ ढक्का का १ १/८ भाग देख पड़ेगा। ढक्का ठीक कुहर में लगी हुई है, इसलिये अधिक दूर तक नहीं देख पड़ती। थोड़ी ही दूर पर मध्य-कर्ण अवस्थित है। इसका भीतरी भाग देखने में छोटा और विश्रृंखल है। इसमें तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ कान की ढक्का के साथ संयुक्त हैं। कान के वीच से कंठ (pharynx) तक कंठ कर्णी-नाली (Custachian tube) नाम की एक लंबी राह है। वही कान के वीच में हवा भर कर ढक्का को कसे रखती है। कान के वीच की आकृति जटिल है। इसमें एक झिल्ली की थैली शंखदेशीय अस्थि (temporal bone) के वीच गढ़े में लटक रही है। यह झिल्ली जिस स्थान के साथ संयुक्त है, उसी में कान के वीच की हड्डियाँ संश्लिष्ट हैं, और वे श्रावणेंद्रिय से संवंध रखनेवाली नाड़ी की तंतुओं से संलग्न हैं। वायु का स्पंदन वाह्य कर्णनली और उसके सन्निकटवर्त्ती स्थानों

से ढक्का के भीतर वाहित होता और ढक्का के बीच कानों में प्रवेश करता है। यह स्पंदन झिल्ली की थैली के अभ्यंतरस्थ श्रवणेंद्रिय-सूचक नाड़ी के शेष भाग से गृहीत होकर जब मस्तिष्क में पहुँचता है, तब शब्द का अनुभव होता है।

हिंदी प्रेमियों से

नम्र निवेदन

माननीय महाशय,

हमारी गंगा-पुस्तकमाला को राष्ट्रभाषा हिंदी की सफलता-पूर्वक सेवा करते हुए आज ६-७ वर्ष हो चुके हैं। आप-जैसे गुण-ग्राहकों ने इसकी खूब ही क़द्र की है। इसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि जितने स्थायी ग्राहक इस माला के हैं, उतने आज तक किसी भी माला के नहीं हुए। इसकी ग्राहक-संख्या २,००० के ऊपर पहुँच चुकी है, तो भी अभी इसके और अधिक प्रचार की ज़रूरत है—सुचारु रूप से 'माला' को चलाते रहने के लिये हमें कम-से-कम २,००० ही स्थायी ग्राहक और चाहिए। यदि हिंदी-हितैषी, गुणज्ञ, सहृदय सज्जन ज़रा-सी कोशिश करें, तो उनके लिये गंगा-पुस्तकमाला के २,००० स्थायी ग्राहक और जुटा देना कुछ कठिन काम नहीं। हमारी 'माधुरी' के तो वे १०,००० से भी ऊपर ग्राहक बना चुके हैं। अतएव कृपया आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनें और अपने इष्ट-मित्रों को भी आग्रह-पूर्वक बनावें। इस "निवेदन" के साथ लगा हुआ "प्रार्थना-पत्र" भर-कर भेजें और भिजवाएँ। आपकी यह ज़रा-सी सहायता हमारे सभी मनोरथ सिद्ध कर देगी, और इसके लिये हम आपके सदा कृतज्ञ रहेंगे।

अस्तु। हमने तो अपना कर्तव्य पालन कर दिया। अब देखें हमारे इस "नम्र निवेदन" का आपके ऊपर भी कुछ असर होता है या नहीं। हम उत्सुकता के साथ आपकी सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आइए-आइए, हिंदी-माता की सेवा में हमारा हाथ बँटाइए, और इस प्रकार स्वयं भी पुण्य-लाभ कीजिए।

निवेदक—

छोटेलाल भार्गव बी० एस-सी, एल्-एल्० बी०

प्रकाशक गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

पुस्तक सूची

पुस्तक	मूल्य
अद्भुत आलाप	१), १॥)
अयोध्यासिंह उपाध्याय	।)
आत्मार्पण	।)
इँगलैंड का इतिहास—	
प्रथम भाग	२), २॥)
द्वितीय भाग	१॥), २)
उद्यान	॥।=), १।)
एशिया में प्रभात	॥), १)
कर्बला	१॥), २)
ख़ाँजहाँ	१), १॥)
चित्रशाला	१॥), २।)
द्विजेंद्रलाल राय	।)
दुर्गावती लगभग	१)
देव और विहारी	१॥=), २)
देश-हितैषी श्रीकृष्ण	=)
नन्दन-निकुंज	१), १॥)
नारी-उ [illegible]	॥)
पत्रांजलि	॥)
पूर्व-भारत	॥।=), १।)
प्रायश्चित्त-प्रहसन	।)
प्रेमप्रसून	१।)
बहता हुआ फूल	२), २॥)
विहारी-रत्नाकर लगभग	५)
बुद्ध-चरित्र लगभग	॥।)
भगिनी भूषण	=)
भवभूति	॥=), १=)
भारत की विदुषी नारियां	॥)
भारत-गीत	॥=), १)
भारतीय अर्थ-शास्त्र	२), २॥)
भूकंप	१), १॥)
मनोविज्ञान	॥।), १।)
मूर्ख-मंडली	॥=), १)
मंजरी	१)
रंगभूमि लगभग	५)
रावबहादुर	॥।), १।)
विजया	१॥), २)
विश्व-साहित्य	१॥), २)
वंकिमचंद्रचटर्जी	१)
सम्राट् चंद्रगुप्त	।)
सुकवि-संकीर्तन	१।), १॥।)
सुघड़ चमेली	=)
हिंदी-नवरत्न	४॥), ५)

[जो पुस्तकें न मँगानी हों, उनके नाम कृपया काट दीजिए]